अखण्ड ज्योति

एक अंक का ।)

...भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ।।

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम०ए०

वर्ष ९] मथुरा, १ अप्रैल सन् १९४८ ई० [अंक ४

गुण-ग्राहक दृष्टि को जागृत कीजिए।

जिसके दोष देखने को हम बैठते हैं उसके दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि इस प्राणी या पदार्थ में दोष ही दोष भरे हुए हैं, बुराइयां ही बुराइयां उसमें संचित हैं। पर जब गुण ग्राहक दृष्टि से निरीक्षण करने लगते हैं तो हर प्राणी में हर पदार्थ में कितनी ही अच्छाइयाँ, उत्तमताएं, विशेषताएं दीख पड़ती हैं।

वस्तुतः संसार का हर प्राणी एवं पदार्थ तीन गुणों से बना हुआ है। उसमें जहां कई बुराइयां होती हैं वहां कई अच्छाइयां भी होती हैं। अब यह हमारे हाथ में है कि उसके उत्तम तत्वों से लाभ उठावें या दोषों का स्पर्श कर दुखी बनें। हमारे शरीर में कुछ अंग बड़े मनोहर होते हैं पर कुछ ऐसे कुरूप और दुर्गन्धित हैं कि उन्हें ढके रहना ही उचित समझा जाता है।

इस गुणदोष मय संसार में से हम उपयोगी तत्वों को ढूँढें, उन्हें प्राप्त करें और उन्हीं के साथ विचरण करें तो हमारा जीवन सुख मय हो सकता है। बुराइयों से शिक्षा ग्रहण करें, सावधान हों, बचें और उनका निवारण करने का प्रयत्न करके अपनी चतुरता का परिचय दें तो बुराइयां भी हमारे लिए मंगलमय हो सकती हैं। चतुर वैद्य वह है जो विषों को शोधन और मारण करके अमृतोपम औषधि बना लेता है, चतुर मनुष्य वह है जो बुराइयों से भी लाभ प्राप्त कर लेता है। गुण ग्राहक दृष्टि को जागृत करके हम हर स्थिति से लाभ उठा सकते हैं।

—

अगला अंक 'गायत्री अंक' होगा।

ऐसा बहुमूल्य ज्ञान भाग्यवानों को ही प्राप्त होता है.

आप अपने मित्रों से कहिए कि वे आज ही अखंड ज्योति के ग्राहक बनें और इस अमूल्य रत्न भण्डार से वंचित न रहें।

अखंड ज्योति का अगला अंक गायत्री अंक होगा। उसमें वेद माता गायत्री के ऐसे रहस्यों का प्रकटी करण किया जायगा जो अब तक बहुत कम लोगों को विदित है। पृष्ठ संख्या साधारण अंक से ड्योढ़ी रहेगी पर इतने ही पृष्ठों में जो अमूल्य ज्ञान रहेगा उसकी तुलना ऊँट पर लदने लायक पोथों से भी नहीं की जासकती।

वेद-हिन्दू संस्कृति के उद्‌गम स्रोत हैं, इन वेदों का उद्‌भव वेदमाता गायत्री से हुआ है। इस महामंत्र में सूक्ष्म रूप से वह सब भरा हुआ है जो हमारे विविध धर्मशास्त्रों में सविस्तार कहा गया है। गायत्री के बारे में अधिक से अधिक जानना हर विचार शील व्यक्ति का कर्तव्य है। इस, उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए यह अंक पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जारहा है।

पाठ्य सामिग्री बहुत अधिक होने से उसे अप्रेल और मई, दो अंकों में पूरा किया जायगा, लेख एक से एक उत्तम, अमूल्य और अत्यन्त खोज पूर्ण हैं। उनमें से कुछ लेखों की सूची नीचे दी जाती है। इनके अतिरिक्त और भी अनेकों लेख होंगे।

(१) गायत्री की उत्पत्ति कैसे हुई ?
(२) वेदमाता गायत्री का तत्व ज्ञान।
(३) सतोगुणी ब्राह्मी शक्ति की वास्तविकता।
(४) आत्मबल और परमात्मा की प्राप्ति।
(५) गायत्री का महान् महात्म्य।
(६) दीक्षा और गुरुमंत्र का आधार गायत्री।
(७) गायत्री द्विजों का नित्य नियम।
(८) इस साधना की पांच शर्तें
(९) गायत्री शिक्षा से भूतल पर स्वर्गीय सुख।
(१०) घोर विपत्तियों से छुटकारा।
(११) नौ अद्‌भुत सिद्धियों की प्राप्ति।
(१२) गायत्री और यज्ञोपवीत का प्रगाढ़ संबंध।
(१३) सूक्ष्म ग्रन्थियों का विकाश।
(१४) षट्‌चक्रों और कुंडलिनी का जागरण।
(१५) गायत्री की त्रिविधि साधना।
(१६) अलौकिक शक्तियों का आभास।
(१७) सर्व पापनाशक प्रायश्चित का विधान।
(१८) साधना की आवश्यक जानकारियां।
(१९) सर्व सुलभ लघु गायत्री।
(२०) गायत्री की ब्रह्मसन्ध्या।
(२१) गायत्री साधक को होने वाले अद्‌भुत अनुभव
(२२) चौबीस शक्तियों का उद्‌भव।
(२३) सब अपशकुनों का परिहार।
(२४) गायत्री द्वारा भौतिक और आत्मिक उन्नतियां।
(२५) विघ्न विदारक सवालक्ष जप का अनुष्ठान
(२६) महा अनुष्ठान से मंत्र सिद्धि।
(२७) ध्यान की धारणा से समाधि।
(२८) गायत्री साधना से समस्त मंत्रों का लाभ
(२९) मानवधर्म शास्त्र का निचोड़—गायत्री
(३०) एक एक शब्द में ज्ञान समुद्र का समावेश

जिन्हें यह अमूल्य सामिग्री प्राप्त करनी हो वे शीघ्र से शीघ्र ग्राहक बन जांय। अंक उतना छपेगा जितने ग्राहक हैं। देर करने वालों को अमूल्य अंक से वंचित रहना पड़ेगा।

—मैनेजर 'अखंडज्योति', मथुरा।

सत्य प्रेम न्याय

अखण्ड ज्योति
-मथुरा-

मथुरा १ अप्रैल सन् १९४८

दान में विवेक की आवश्यकता

(२)

दान लेने और देने वाले के मन में यह प्रश्न पूरी सतर्कता के साथ उपस्थित रहना चाहिए कि इस पैसे का उपयोग (१) यज्ञार्थाय (२) विपद्, निवारणाय, इन दो कार्यों के अतिरिक्त और किसी तीसरे काम में तो नहीं होगा। जब यह पूर्ण निश्चय हो जाय तभी दान देना और लेना चाहिए। संसार में शारीरिक, मानसिक नैतिक, सामाजिक, आर्थिक आध्यात्मिक विभूतियों की संवृद्धि के लिए एवं पाप तापों को हटाने के लिए जो प्रयत्न होते हैं वे यज्ञ हैं और विपद् ग्रस्तों को अपने पैरों पर खड़ा कर देने के लिए एवं असमर्थों की जीवन रक्षा के लिए जो कार्य किये जाते हैं वे विपद् निवारण की श्रेणी में आते हैं। इन कार्यों में पैसा, समय, बल बुद्धि और आवश्यकता होने पर प्राण तक दे देने चाहिए। यह दान की शास्त्रोय मर्यादा है।

उपरोक्त शास्त्रीय मर्यादा के अतिरिक्त अन्य प्रयोजनों के लिए जो दान लिया या दिया जाता है वह सब प्रकार अनिष्ट कर, घातक, भयंकर परिणाम उत्पन्न करने वाला तथा पाप कर्म है। अशास्त्रीय भिक्षा-पाप, अनाचार, दुख, दुर्गुण एवं नरक की सृष्टि करती है। भिक्षा सचमुच एक लज्जा की चीज है। सर्वत्र भिक्षा माँगने को मृत्यु के समान कष्टदायक-अपमान जनक-कहा है। सचमुच अशास्त्रीय भिक्षा अत्यन्त ही गर्हित है। वह नीचता, हीनता, निर्लज्जता एवं पशुता को प्रकट करती है।

हमारे देश एवं धर्म का यह दुर्भाग्य है कि आज अशास्त्रीय भिक्षा पर जीविका निर्भर करने वाले मनुष्यों की संख्या लाखों तक पहुंच गई है, पिछली सरकारी जन गणना के अनुसार भारतवर्ष में भिखारियों की संख्या ५६ लाख के लगभग पहुंच गई है। इनमें से भिक्षा के वास्तविक अधिकारी उंगलियों पर गिनने लायक निकलेंगे। लोक कल्याणकारी, जन सेवा के कार्यों में सर्वतो भावेन लगे हुए विद्वान निस्पृह ब्राह्मणों की संख्या अत्यन्त ही न्यून निकलेगी, सब कुछ त्याग कर सन्यासी होकर जनता जनार्दन की आराधना में प्रवृत्त साधु सन्यासी चिराग लेकर खोजने पड़ेंगे। आकस्मिक, घोर अनिवार्य विपत्ति से पीड़ितों, एवं असमर्थ, असहाय दरिद्रों की संख्या भी बहुत ही कम निकलेगी। इन छप्पन लाख भिक्षुकों में पांच हजार भिक्षुक भी कठिनाई से ऐसे निकलेंगे जो शास्त्रीय भिक्षा के अधिकारी हैं शेष साढ़े पचपन लाख तो ऐसे मिलेंगे जिन्होंने भिक्षा को एक लाभदायक व्यवसाय बना लिया है।

ब्राह्मणत्व के समस्त गुणों से रहित व्यक्ति भी अपने को इस आधार पर भिक्षा का अधिकारी बताते हैं कि हम ब्राह्मणों के वंशज हैं। यह झूठा दावा है। ब्राह्मत्व कोई जागीर नहीं है जो पुश्त दर पुश्त विरासत में मिलती चली जाय। जो व्यक्ति ब्राह्मणत्व के गुण कर्म स्वभाव से युक्त है उसे भिक्षा जीविका करनी चाहिए पर यदि उसके बेटे में वे गुण न रहें तो उसे ब्राह्मणत्व के लिए मिलनी वाली भिक्षा ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। इसी प्रकार संसार को मुक्ति दिलाने के

प्रयत्न में अपनी मुक्ति तक को त्यागे हुए जो सन्यासी हैं वे ही अपनी सेवा के बदले में संसार से भिक्षा ले सकते हैं। जो केवल मात्र अपनी-निज की मुक्ति के लिए प्रयत्न शील हैं, दुनियां को झूठा कहते हैं, लोक सेवा से दूर रहते हैं वे एक के स्वार्थी हैं, वे अपने निज के लाभ में ही तो प्रवृत्त हैं चाहे वह लाभ धन का हो, स्वर्ग को हो या मुक्ति का हो। जैसे धन कमाने के लिए ही सदा अपने व्यापार में प्रवृत्त कोई व्यापारी भिक्षा का अधिकारी नहीं, वैसे ही अपनी निज की मुक्ति में तल्लीन योगी सन्यासी भी भिक्षा के अधिकारी नहीं। जब संसार झूठा है तो भिक्षा भी झूठी है। जब संसार की सेवा से उपेक्षा करते हैं और अपने को उससे अलग मानते हैं तो फिर भिक्षा से भी अलग रहना चाहिए, उसकी भी उपेक्षा करनी चाहिए। भजन करना व्यक्तिगत नित्य कर्म है। स्नान, भोजन, व्यायाम की भांति भजन भी एक अत्यन्त लाभ प्रद नित्यकर्म है। भजन करना किसी दूसरे पर अहसान करना नहीं है। न इसके करने से किसी को भिक्षा लेने का अधिकार मिलता है।

देखा जाता है कि धर्म के नाम पर या दीनता के नाम पर नाना प्रकार के आडम्बरों, घृणित मायाचारों से भिक्षा उपार्जन की जाती है। इन मायाचारों से जहां जनता का पैसा बर्बाद होता है वहां उसके मस्तिष्क में अन्धविश्वास, भ्रम, भय, अज्ञान एवं अविचार का विष भी प्रवेश होता है। पुरुषार्थ, प्रयत्न, कर्म और साहसको छोड़ कर लोग आकाश में से देवताओं द्वारा स्वर्ण पुष्प बरसाये जाने की आशा करने लगते हैं। अनेकों व्यक्ति अपने कार्यों में दोष ढूंढ़ कर उन्हें सुधारने की अपेक्षा दैव कोप की अनिष्ट कल्पना करके हतोत्साह हो जाते हैं। धर्म का आडम्बर करके जीविका कमाने वालों के पास विद्या-बल, विवेक ज्ञान, अनुभव, तप आदि महत्तायें तो होती नहीं, इनके न होने पर वे झूठा आधार ग्रहण करते हैं, अपने आपको देवताओं का प्रतिनिधि, कृपापात्र या एजेन्ट साबित करते हैं जिससे भोली जनता उन्हें देव कृपा प्राप्त करने के लिए पूजे। यह माया-चार जनतामें ऐसे विषैले अन्ध विश्वास पैदा करता है, जो संसार में भयंकर अनिष्ट उत्पन्न करते हैं।

गरीबी का आडम्बर बना कर भिक्षा मांगने वाले अधिकांश ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनके शरीर में श्रम करने की, जीविका उपार्जन करने की पर्याप्त क्षमता होती है। वे चाहें तो महनत मजूरी करके आसानी से अपना गुजारा कर सकते हैं। पर उन्हें बिना परिश्रम किये, आसानी से जब भिक्षा मिल जाती तो पसीने बहाने के लिए क्यों तैयार हों? वे गरीबी के, बीमारी के, विपत्ति के झूठे बहाने बनाकर भिक्षा मांगते रहते हैं। कुछ अत्यन्त घृणित कोटि के भिक्षुक तो अधिक जीविका कमाने के लिए बड़े लोम हर्षक कार्य करते हैं। वे अपने शरीर में स्वेच्छा पूर्वक घाव बनाते हैं, घावों को अच्छा नहीं होने देते, अपने बालकों के नेत्र, हाथ, पैर आदि तोड़ देते हैं, इस घृणित काम को वे इसलिए करते हैं कि दर्शक लोग दया द्रवित होकर उन्हें अधिक पैसा दें। गायों या बछड़ों को पांच पैर का या अधिक अंग का बनाने के लिए कसाइयों द्वारा कलम लगवाई जाती है। एक बछड़े का पैर काट कर और दूसरे बछड़े की पीठ का मांस काट कर इन दोनों को कसाई लोग सीं देते हैं। जब तक वह घाव अच्छा नहीं होता तब तक बछड़े को इस प्रकार जकड़ा रहने देते हैं कि वह जरा भी हिले न सके। जब वह जुड़ जाता है तो इसे शिवजी का वाहन नान्दी बता कर भिखारी लोग भीख माँगते हैं। बहुत से बछड़ों के पैर की जगह मांस का लोथड़ा भी जोड़ देते हैं। इस क्रिया में एक बछड़ा तो आरंभ में ही मार डाला जाता है, दूसरा जिसमें कलम लगाई गई थी या तो मर जाता है या बड़ी मुश्किल से मृत्यु तुल्य कष्ट सह कर जी पाता है। ऐसे निर्दय हिंसा पूर्ण कार्य करते हुए उन्हें तनिक भी दया नहीं आती। धर्म जीवी

भिक्षुकों में से भी अनेक ऐसे ही निर्दय हो जाते हैं। देवी-भैरव, भवानी, पीर, मसान आदि के नाम पर बकरा, मेंढ़ा, भैंसा, मुर्गा आदि पशु पक्षियों का गला काटते और कटवाते हैं।

अशास्त्रीय भिक्षा, पाप रूप है। ऐसा अन्न खाने वालों के रोम रोम में दुर्गुणों का समावेश हो जाता है। वे झूठ, चोरी, छल, व्यभिचार, मद्यपान, नशेबाजी, ढोंग, पाखण्ड, आलस्य, प्रमाद, हिंसा असहिष्णुता, अनुदारता आदि असंख्यों दोषों से ग्रसित होजाते हैं। स्वाभिमान एवं स्वावलम्बन नष्ट होने के साथ साथ आत्मा की भव्य ज्योति बुझ जाती है और उनसे मन मरघट में पैशाचिक कुविचार नंगा नृत्य करने लगते हैं। अशास्त्रीय भिक्षा का अन्न सद्बुद्धि पर बड़ा घातक आक्रमण करता है और ऐसा अन्न, खाने वाले को तो शीघ्र ही एक घृणित दयनीय नारकीय प्राणी के रूप में परिणत कर देता है। ऐसे प्राणियों की वृद्धि होना किसी भी देश या जाति के लिए एक भारी खतरा है क्यों कि वे प्राणी संक्रामक रोगों के कीटाणुओं की भांति जहां भी फिरते हैं वहीं अनिष्ट उत्पन्न करते हैं।

सच्चे यथार्थी भिक्षुकों की अभिवृद्धि किसी भी समाज के लिए गौरव की बात है। त्यागी, परोपकारी, विद्वान्, विशेषज्ञ, अपने सम्पूर्ण निजी स्वार्थों को तिलांजलि देकर जन कल्याण के कार्य में जुटे रहें यह बड़ा ही ऊंचा आदर्श है। जहां थोड़ी सी योग्यता वाले मनुष्य अपनी योग्यता के बदले में प्रचुर धन कमा कर ऐश्वर्यवान् बन जाते हैं वहां महान तप योग्यताओं को जनता जनार्दन के चरणों में अर्पित करके केवल मात्र भिक्षा के दानों पर निर्वाह करना दैवी त्याग है, ऐसे त्यागियों की वृद्धि होना गौरव की बात है। परन्तु खेद पूर्वक कहना पड़ता है कि ऐसे भिक्षा जीवी अब प्रायः विलुप्त हो चले हैं। अब तो व्यवसायी लोग इस यज्ञ सामिग्री की-भिक्षा की-लूट कर रहे हैं। यह शर्म की, कलंक की और दुःख की बात है।

भिक्षा वृत्ति का सदुपयोग हो सच्चे भिक्षुकों का हक, चोर लुटेरे न लूटने पावें इसके लिए भिक्षा देने वालों की जिम्मेदारी अब बहुत बढ़ी गई है उन्हें देखना चाहिए कि मांगने वाला यज्ञार्थी या विपद् वारणाय ही मंगाता है न ? यदि इ दोनों में से कोई प्रयोजन न हो और वह मुफ का माल पाने की वृत्ति से मांग रहा हो तो उ एक तिनका भी देने से मनाकर देना चाहिए अविवेक पूर्वक, कुपात्रों को दिया हुआ दान, उ दान दाता को नरक में ले जाता है क्यों कि उ निठल्ले भिक्षुकों द्वारा फैलने वाली अनैतिकता व उत्तर दायित्व उन अविवेकी दानदाताओं पर ह पड़ता है। यदि उन्हें भिक्षा न मिले तो सी रास्ते पर आने के लिए स्वयं ही मजबूर होंगे परन्तु यदि अविवेकी दाता उनका घड़ा भरते र रहेंगे तो उनके सुधारने की, सीधे रास्ते प आने की कोई आशा नहीं करनी चाहिए।

दान में विवेक आवश्यक है। जो दानके अधि कारी हैं उन्हें जी खोलकर मुक्त हस्त होकर दे चाहिए। संसार में सात्विकता, सद्भावना, ज्ञा विवेक तथा सुख शान्ति बढ़ाने के लिए विपत्ति ग्रस्तों को संकट से बचाने के लिए समय सहायता दी जानी चाहिए। शरीर बुद्धि से, पैसे से, यहां तक कि प्राण देकर विश्व के कष्ट मिटाने और सुख बढ़ाने के लि प्रयत्न करना चाहिए। सच्चे ब्राह्मणों को, स साधुओंको, सच्चे ब्रह्म साधकों को, सच्ची संस्था को ढूंढ़ कर उन्हें भिक्षा देनी चाहिये उनके होने से धर्म की, वैभव की, सुख शान्ति की होती है। विपद् ग्रस्तों को उठाकर छाती लगाना चाहिए, उनके लिए हर संभव एवं उ सहायता पहुंचानी चाहिए। परन्तु सावधान ! का ग्रास शृंगाल न छीनने पावें, भिक्षा का ह शाकल्य यज्ञ कुण्ड में पड़ने की जगह अप नाली में न बहजाय। यज्ञार्थाय और विपद् वार प्रयुक्त न होकर कहीं आपका दान कुपात्रों न लूट लिया जाय।

'ओ३म्' परिचय

(श्री स्वामी सर्वदानन्दजी)

व्याकरण की रीति से "अ-उ-म्" इन तीनों के मेल से 'ओम्' शब्द सिद्ध होता है, यह अव्युत्पन्न है। द्वितीय 'अव्' धातु से औणादिक 'मन्' प्रत्यय के विधान से ओम् बनता है इसको व्युत्पन्न कहते हैं। अतएव 'अव्' धातु के जितने अर्थ हैं उन सबका यह बोधक है। अव् धातु के अर्थ यह हैं—रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति, अवगम, प्रवेश, श्रवण, स्वाम्यर्थ, याचनक्रिया, इच्छा, दीप्ति, वाप्ति, आलिङ्गन, हिंसा, दान, भाग और वृद्धि यह १९ अर्थ हैं। इनका साधारण विवरण यह है। (१) रक्षण-साक्षात् अथवा परम्परा सम्बन्ध से सब का रक्षक। (२) गति के तीन अर्थ हैं 'ज्ञान, गमन और प्राप्ति' ज्ञान-सर्वदा याथात्म्यभाव से सर्व वस्तु का ज्ञाता, गमन-सदा स्थिर स्वभाव होने पर भी संसार-चक्र के चलाने का हेतु, प्राप्ति-व्यापक होने से सर्वत्र विद्यमान, सदा सबको प्राप्त। समस्त गति शब्द का अर्थ प्रयत्न भी है, गति-ज्ञान पूर्वक संसारमर्यादा को चलाने के लिए सर्वत्र प्रयत्न का प्रसारक। (३) कान्ति--इच्छा रहित होने पर भी जीवों की इच्छा पूर्ति का निमित्त, (४) प्रीति--आनन्द स्वरूप होने से सबकी प्रीति का स्थान, (५) तृप्ति--स्वयं शान्त स्वरूप होने से सदा भक्तों के लिए हर्षोत्पादक, (६) अवगम--मंगल स्वरूप होने से मोक्ष का दाता, (७) प्रवेश--सूक्ष्मतम होने से सबका अन्तरात्मा, (८) श्रवण--श्रोत्र इन्द्रिय का निर्माता होने से स्थूल, सूक्ष्म, गुप्त और प्रकट शब्दों का श्रावक, (९) स्वाम्यर्थ--सबका स्वयं सिद्ध अधिपति होने से स्वामी, (१०) याचन--सर्वैश्वर्यसम्पन्न होने से सदा सबका सहायक और सबकी याचना का स्थान, (११) क्रिया--क्रियमाण जगत् का निर्माचक होने से ज्ञान पूर्वक क्रिया का संचारक। स्थूल प्रयत्न का नाम ही क्रिया है, उपर्युक्त प्रयत्न से ही यह भेद है, (१२) इच्छा--स्वयं इच्छा रहित होने पर भी जीवों के निमित्त शुभ इच्छा का प्रकाशक, (१३) दीप्ति--तेजस्वरूप होने से अविद्या-अन्धकार का विनाशक, (१४) वाप्ति--अतीन्द्रिय, अति सूक्ष्म और अप्रतीयमान होने से भी शुद्धान्तःकरण में स्वस्वरूप प्रदर्शक, (१५) आलिंगन--व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध से सदा सर्वत्र पूर्ण होने से सबका सम्बन्धी, (१६) हिंसा-यथार्थ रूप से वेद-मर्यादा को पालन करने वाले पुरुषों के अज्ञान, विपरीत ज्ञान, वैर विरोधादि दुःखोत्पादक दोषों का ध्वंसक, (१७) दान--सृष्टि समकाल से ही सुख साधन पदार्थों और उनको उपयोग में लाने के निमित्त यथार्थ बोध का दाता, (१८) भाग--प्रलय के समय संसार का विभाजक अर्थात् दृश्यमान स्थूल जगत् को सूक्ष्म-अदृश्य करने का हेतु, (१९) वृद्धि--उत्पत्ति काल में संसार-रचनार्थ सूक्ष्म प्रकृति को बढ़ाने, स्थूलपथ में लाने और जीवों के कर्म-फल भुगाने का निमित्त।

यदि इन अर्थों का व्याकरण की रीति से विस्तार किया जावे तो यह 'ओम्' शब्द अनन्तार्थ का द्योतक हो सकता है।

किसी भी पुरुष में इन अर्थों का समावेश नहीं हो सकता, क्योंकि वह अल्पज्ञ, एकदेशी, न्यूनता सहित और पूर्णता रहित है, अतएव पूर्ण परमात्मा का ही यह मुख्य नाम है। इस 'ओम्' शब्द का विभक्ति से भेद, वचन से व्यत्यय और लिंगसूचक प्रत्यय से परिवर्तन कभी भी नहीं हो सकता है। यह वृद्धि-ह्रासशून्य-सदा एक रस रहने से अव्यय संज्ञक है। इसके आगे विभक्ति आते ही अपने रूप को खोदेती है, अतएव यह अभेद्य है।

'अ' से विराट् अग्नि और विश्व का ज्ञान, 'उ' से हिरण्य गर्भ वायु और तेजस का बोध, 'म्' से ईश्वर आदित्य और प्राज्ञ का परिज्ञान होता है। यह परमात्मा के पवित्र नाम 'ॐ' विद्यमान है।

नीच कौन है।

विद्वानों और विचारकों की सभा लगी हुई है। भगवान वेदव्यास सभापति के आसन पर आसीन हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि 'नीच कौन है?' कई सभासद अपने अपने विचार प्रकट करते हैं।

एक कहता है—मेरा विश्वास है कि 'गुण हीन जनो जघन्यः' जो मनुष्य गुणहीन है वह नीच है।

दूसरा कहता है—जो कला रहित है वह नीच है। कहा भी है—'संगीत साहित्य कला विहीनः, साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः' अर्थात् जो संगीत साहित्य कला से रहित है वह बिना सींग पूँछ का साक्षात् पशु है।

तीसरा कहता है—सकल उच्चताऐं धन से मिलती हैं, इसलिए जिसके पास धन नहीं वह नीच है। महर्षि चाणक्य ने धनकी प्रशंसा में कहा है—

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेवनामः
साबुद्धिरप्रतिहता वचनम् तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुष स एव,
वाह्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥

अर्थात्—वही इन्द्रियां हैं, सबों के नाम भी वही है, वही तीक्ष्ण बुद्धि है, वही मधुर वचन है। परन्तु जो पहले था—वह एक धन नहीं है। उसी एक के न रहने से मनुष्य और का और दिखाई पड़ता है। यह है धन की महिमा। जिस के पास धन नहीं वह नीचही तो गिना जाता है।

इसी प्रकार और भी अनेकों सभासदों ने अपने अपने भिन्न भिन्न मत प्रकट किये। विवाद बढ़ता जाता था—मतैक्य का कोई लक्षण दिखाई न देता था, निदान्—फैसला सभापति जी के ऊपर छोड़ा गया।

भगवान् वेदव्यास ने कहा—मेरा विश्वास है कि—गुण, कला और धन के बिना कोई नीच नहीं बनता और न इनके होने से सच्चे अर्थों में कोई ऊँच बन सकता है। मेरा मत है कि—'नारायणस्मरण हीन जनो जघन्यः।' जो लोग परमात्मा का स्मरण नहीं करते वे नीच हैं।

परमात्मा के स्मरण से मनुष्य अपने भीतर बाहर सर्वत्र सर्व व्यापक सत्ता को देखता है। उसके नियमों आज्ञाओं पर चलने के लाभ, और उल्लंघन के दंड को भली प्रकार समझता है। फलस्वरूप कुमार्ग से बच कर सन्मार्ग पर चलता है। सन्मार्ग पर चलने वाला ऊंच एवं न चलने वाला नीच होता है। जो परमात्मा को विस्मरण कर देता है वही नीच बनता है। जो परमात्मा को स्मरण रखेगा वह उसे अपने चारों ओर व्यापक देखकर बुरे काम, अधर्म आचरण कर ही नहीं सकता।

इसलिए हे सभासदो! परमात्मा का सदैव स्मरण रखते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए। जो ऐसा नहीं करता वही नीच है।

यजुर्वेद ४० वें अध्याय के १५ वें मंत्र का एक अंश है—'ओ३म् स्मर' ओम् का स्मरण कर। कठोपनिषद् में नचिकेता ने यमराज से ब्रह्म के संबंध में पूछा कि वह क्या है? इसका उत्तर देते हुए यम ने कहा 'ओम् इमेतत्' अर्थात् वह ओम् नाम वाला परमेश्वर है।

गीताने 'ओम् इत्येकाक्षरं ब्रह्म' एकाक्षरी ॐ को ब्रह्म कहा है।

तैत्तरीयोपनिषद में 'ओ३म् इति ब्रह्म' ओम् ब्रह्म बताया है। आगे चलकर वहीं 'ओ३म् इति सर्वम्' पद आता है जिसमें सर्व व्यापी परमात्मा को ओम् कहा है। हमें परमात्मा के इस वैदिक नाम 'ओ३म्' का नित्य जप करना चाहिए।

आलस्य भिक्षावृत्ति की कुञ्जी और सारे पापों की जड़ है।

+ + +

नैतिकता को ऊँची उठाओ।

(श्री दौलतरामजी कटरहा बी० ए० दमोह)

महात्मा एपिक्टेटस कहा करते थे कि भेड़ें जो घास-पात खाती हैं उसका ऊन बनाती हैं और अगर इंसान अन्न खाकर कुछ भी पैदा न करे तो वह पशुओं से भी बदतर है। संसार में जो प्राणी अपने आपको जीवित रहते हुए अधिक उपयोगी सिद्ध करते हैं उनकी नस्ल बनी रहती हैं और दूसरे काट डाले जाते हैं। बकरे को ही लीजिए। बकरा न तो दूध देने के काम का है और न बोझा ढोने का, इसलिए वह काट डाला जाता है पर बकरी दूध देती है इसलिए बकरियाँ कम काटी जाती है। अतएव यदि हम चाहते हैं कि हम संसार में भली भाँति बने रहें तो हमें चाहिए कि हम अपने आपको दूसरों के लिए उपयोगी साबित करें और अपनी उपयोगिता तथा सेवा-शक्ति को दिन प्रति दिन बढ़ाते रहें।

यदि हमारा जीवन उपयोगी है और जनता भी हमारी उपयोगिता को स्वीकार करती है तो हमें अपनी जीवन यात्रा के लिए सम्बल (पाथेय) कहीं भी मिल जायगा। उपयोगी व्यक्ति जहां कहीं भी जाता है वहीं उसे उसकी जीवन यात्रा के लिए मार्ग-व्यय मिल जाता है। उसके लिए उसे चिन्ता करने की जरूरत नहीं। आप यदि अपने पास की वस्तु दूसरों को देने के लिए सदा उत्सुक रहेंगे तो आपको बदले में जीवन-यात्रा के लिए कुछ मिलता भी है इसकी चिंता करने की अधिक जरूरत न पड़ेगी। आप अपना कर्म करते जाइये, जो कुछ बने समाज को भेंट करते जाइये, आपको गुजर के लिए पैसा मिलता जायगा। क्योंकि जैसा कि महात्मा इमरसन ने कहा है कि "उपयोगी मनुष्य की संसार को इतनी जरूरत है कि यदि वह जंगल में भी डेरा डालेगा तो लोग जंगल तक एक पक्का रास्ता तैयार कर लेंगे" तो क्या फिर भी उस व्यक्ति को उदरपोषण की चिंता से परेशान होना पड़ेगा ?

लोग कहेंगे कि महाशय यह आपका कोरा आदर्शवाद है। यथार्थता की कसौटी पर कसे जाने पर यह बात खरी नहीं उतरती। इस आक्षेप को हम स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि बहुधा संसार का हित करने वाले लोग सूली पर चढ़ाए जाते हैं और मक्कारों की आव-भगत होती है। पहिले जमाने में सुकरात ईसा,मुहम्मद और दयानन्द जैसे समाज-सुधारकों के साथ लोगों ने जैसा व्यवहार किया वह तो लोग जानते ही हैं पर आज भी हम देखते हैं कि जिनका सिद्धान्त है कि 'रोटी खाओ शक्कर से और दुनिया लूटो मक्कर से' वे ही लोग संसार में ऐश आराम करते हैं और दूसरे सत्य-प्रिय लोगों को खड़े होने के लिए भी जगह नहीं मिलती। वेश्याएं जो दुनिया को बिगाड़ती हैं मजे मारती हैं पर सती स्त्रियों को भोजन वस्त्र भी कठिनता से मिलता है। जनता की उसकी लाचारी के कारण लूटने वाले लोग गुलछर्रे उड़ातेहैं पर जी-तोड़कर रात दिन परिश्रम करने वाले लोगों को मुंह के नेवाले भी नसीब नहीं होते। लोग कहेंगे कि यह अपना अपना भाग्य है—पर हम पूछते हैं कि क्या यह दर असल में अपना अपना भाग्य है अथवा भाग्य और ईश्वर की आड़ में समाज का पाप है ? हम तो समझते हैं कि वेश्या इस लिए ऐश लूटती है कि समाज में पाप-प्रबलता अधिक है। और उसके अनेकों व्यक्ति व्यभिचार-प्रिय हैं। ईमानदार व्यवसायी की अपेक्षा नशीली वस्तुएं बेचने वाला इस लिए अधिक धन-धान्य-सम्पन्न है कि समाज का नैतिक धरातल अत्यन्त नीचा है, वह नादान है और हित-प्रद वस्तुओं की अपेक्षा अपना नाश करने वाली वस्तुओं का अधिक मूल्य चुकाता है। समाज अपने अविवेक के कारण जिन दूषित वस्तुओं में सुख मानता है उसकी ये लोग पूर्ति करते हैं इसलिए ये लोग ऐश लूटते हैं। समाज को यदि व्यभिचार-सुख

और नशीली वस्तुओं की आवश्यकता न रह जावे तो आपको सती स्त्रियां कंगाल और ईमानदारी व्यवसायी कभी गरीब न दिखाई देंगे। 'उपयोगी व्यक्ति सुखी होती है' यह सिद्धान्त तो अक्षरशः धनके सम्बन्ध में भी सत्य उतरता है। प्रश्न केवल यह रह जाता है कि समाज द्वारा उपयोगिता का अर्थ क्या लगाया जाता है। समाज जिसे अधिक उपयोगी समझता है उसे अधिक धन-धान्य-सम्पन्न कर देता है।

आज हमारी निगाहों में चैतन की अपेक्षा जड़ का अधिक मूल्य है। हम आध्यात्मिक सुख की अपेक्षा भौतिक सुख को अधिक महत्व देते हैं और भौतिक ऐश्वर्य भोगने वाले का, आध्यात्मिक पुरुषार्थ करने वालों की अपेक्षा अधिक सम्मान करते हैं अतएव यही कारण है कि भौतिक सुख सामग्रियों को उत्पन्न करने वाले लोगों की आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति अध्यात्म पुरुषार्थियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होती है। अतएव यदि किसी आत्मपुरुषार्थी का किसी समृद्धिशाली की अपेक्षा कम सम्मान होता है तो भूल समाज की है। इससे आत्म-पुरुषार्थी की उपयोगिता कम नहीं होती। उसकी अवहेलना तो समाज की ही अज्ञानता का परिचायक है। अतएव केवल उपयोगी बनने से ही काम न चलेगा। आपको यह भी देखना होगा कि समाज का नैतिक धरातल ऊंचा उठता है और आपकी उपयोगिता समाज-द्वारा स्वीकृत होती है। आप समाज को जो कुछ देते हैं समाज में उसको ग्रहण करने की योग्यता होने पर ही आप समाज द्वारा सम्मानित हो सकते हैं। इसलिए समाज का नैतिक धरातल ऊंचा उठाने का प्रयत्न करना भी आवश्यक है।

यदि समाज का नैतिक धरातल ऊंचा है तो उपयोगी बनना ही सच्चा धनी होना है। उपयोगिता एक ऐसी हुंडी है जिसे सर्वत्र भुनाया जा सकता है। प्राचीन काल में ब्राह्मण इतना उपयोगी था कि उसके राज दरबार में हाजिर होते ही राजा खड़ा होकर उसका अभिवादन करता था। ब्राह्मण नंगे पैर यात्रा करता था पर क्या हम कह सकते हैं कि उसे धन-धान्य की कमी थी? राजा उससे धन-धान्य स्वीकार करने की याचना करता था पर यह उसे स्वीकार न था। वह साक्षात भू देव था। जहां वह जाता वहीं उसको लक्ष्मी मिल सकती थी इसलिए वह उसे लिए लिए फिरने की मूर्खता क्यों करता? इस तरह हम देखते हैं कि अच्छे समाज में हमारी सेवा-शक्ति या हमारी उपयोगिता ही हमारा सच्चा धन है। इस समय हम अपनी सेवाओं के मूल्य की चिंता न कर केवल उपयोगिता के सहारे ही निश्चित दुर्भाग्य से आज हम सच्चे अर्थ में धनी होना भूल गए हैं। हम आज अपने धन को अपने सच्चे पुरुषार्थ और योग्यता का माप दंड नहीं कह सकते। आज हम अपनी उपयोगिता के कारण धनी नहीं वल्कि लोगों को कष्ट दे सकने के कारण, अथवा खोटा माल दे सकने के कारण, धनी बनते हैं। जिस अफसर से लोगों को अधिक हानि हो सकती है वह धनी बन जाता है। व्यापारी भी जनता को कष्ट देकर ही धनी बनते हैं। एक समृद्ध व्यापारी सारे देश का नमक खरीद लेता है और जब नमक की कमी के कारण भाव तेज हो जाता है तो बेच देता है। दूसरा व्यापारी घी में आलू या वनस्पति घी मिलाकर लाखों बना लेता है। इस तरह उपयोगी बनने के स्थान में जनता अभिशाप बनकर आज लोग धनी बनते हैं। ईश्वर वह दिन शीघ्र लावें जब लोग अपनी सेवा-शक्ति को ही अपनी अमूल्य सम्पत्ति मानेंगे।

जीवन एक छोटा-सा दिवस है, किन्तु है वह काम का दिन (यानी छुट्टी का दिन नहीं है)। सम्भव है कि किसी काम से तुम बुराई की ओर जा रहे हो, किन्तु काम न करना कभी अच्छाई की ओर नहीं ले जा सकता।

* * *

ब्रह्मचर्य से बल प्राप्ति।

(श्री अशर्फीलालजी मुख्तार, बिजनौर)

संसार की प्रत्येक वस्तु तीन गुणों से युक्त है, तम, रज, और सत। जो पदार्थ भी हम खाते हैं। उसके तम भाग से स्थूल शरीर यानी हड्डी मांस आदि बनती हैं और शक्ति लेती हैं। रजोगुण भाग से कर्म इन्द्रियां बनती हैं और सतोगुण भाग से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार बनते व पुष्ट होते है। हमारी स्थूल दृष्टि सूक्ष्म की ओर न जाकर स्थूल तक ही सीमित रहती हैं। इसलिए हम वर्तमान स्थिति में इसको असाध्य समझ बैठते हैं। ऐसा नहीं है। हम देखते हैं कि किसी २ मोटे ताजे आदमी में कुछ भी शक्ति नहीं होती, पतला आदमी उससे अधिक काम कर लेता है। इससे यह निश्चय हो जाता है कि बल शरीर के मोटे या पतले होने पर निर्भर नहीं है तो फिर बल किन किन बातों पर निर्भर है। यह पता लग जाने पर वर्तमान समय में भी बल प्राप्त हो सकता है। बल और उसका सही प्रयोग दोनों ही विचारणीय है। जिस मनुष्य की ज्ञान इन्द्रियां मन, बुद्धि और अहंकार आदि निर्बल हैं उसकी कर्मेन्द्रियां और शरीर मोटा ताजा होने पर भी असमर्थ होता है। इसलिए इन १० इन्द्रियों की शक्ति की रक्षा और प्राप्ति आवश्यक हो जाती है। इन इन्द्रियों की शक्ति वीर्य पुष्टि और रक्षा पर निर्भर है। जिसकी ओर हमारा बिल्कुल भी ध्यान नहीं है। प्राचीन समय में वीर्य रक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था आरम्भ के २५ वर्ष तक बच्चों को ऐसे वातावरण में रक्खा जाता था कि जहां उनके विचार वीर्य पात के विषैले कारणों से बिल्कुल सुरक्षित रहते थे। यह समय ब्रह्मचर्य आश्रम का कहलाता था इसके पश्चात वह गृहस्थ आश्रम में भी सीमित मात्रा में केवल सन्तानोत्पति के लिये स्त्री भोग करते थे। और ५० वर्ष की उम्र में वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर इस ओर से फिर सदा के लिए सुरक्षित हो जाते थे। यह वीर्य रक्षा ही उनको शक्ति शाली बनाये रखती थी और अब वीर्य जैसे इस अनमोल रत्न को बेदर्दी के साथ बर्बाद करने से हम निर्बल और शक्तिहीन होरहे हैं। प्राचीन समय में खाने को खूब मिलता था और उससे पैदा हुए वीर्य को सुरक्षित रक्खा जाता है। आजकल खाने को कम और वीर्य की बर्बादी ज्यादा—बिल्कुल उल्टा हो रहा है, तो काम कैसे चले। पौष्टिक खाना खानेकी तो सबकी शक्ति नहीं है हां वीर्यकी रक्षा अपने वश की चीजहै तो हमको उसकी ओर खास ध्यान देने की आवश्यकता है।

एक डाक्टर साहब ने मुझसे पूछा कि "मुख्तार साहब! हमारे शास्त्र यह कहते हैं कि काम को काबू में करो क्या यह सम्भव है?" मुझे एक डाक्टर के मुख से ऐसी बात सुनकर बड़ी हंसी आई मगर मैंने हंसी को रोक लिया। डाक्टर साहब का ख्याल यह था कि काम शक्ति तो कन्ट्रोल होनी असम्भव सी है। मैंने डाक्टर साहब से कहा कि आप दवाई देकर सुस्ती के रोगी की काम इच्छा तीव्र कर देते हैं या नहीं? वह बोले हां ऐसा तो होता है। मैंने उनसे कहा कि इससे यह सिद्धि होता है कि काम शक्ति को तीव्र करने की शक्ति खाद्य पदार्थों में है। यदि तीव्र करने वाले पदार्थों का सेवन न करे तो काम शक्ति स्वयं ही दब जायगी किसी भी परिश्रम की आवश्यकता नहीं होगी इसलिए यदि तीक्ष्ण पदार्थ और वह सब पदार्थ जो काम शक्ति को उत्तेजित करते हैं खाना छोड़ दें तो स्वयं ही वीर्य की रक्षा हो जायगी इन पदार्थों का खाना जारी रहा तो वीर्य की रक्षा हो ही नहीं सकती। इससे नतीजा यह निकला कि आहार शुद्ध और सात्विक होना पहली शर्त है। उसका बनाना और खाना भी गुरुजनों की बताई हुई विधी से होगा तो सोने में सुहागा हो जायगा। इस तरह से जो खाना हम खाते हैं उसे उत्तेजित वस्तुओं से मिश्रित कर लेते हैं। इसलिये वह खाना जितना

मृत्यु शोक की शान्ति।

(ले० पं० तुलसीरामशर्मा वृन्दावन)

पिता की मृत्यु के कारण दुखित भरत को श्रीरामचन्द्रजी समझाते हैं—

तमेवंदुखितंप्रेक्ष्य विलपंतंयशस्विनम्।
रामः कृतात्माभरतं समाश्वासयदात्मवान्॥
(वा० रा० अयो० १०५।१४)

धीर और पवित्र हृदय वाले श्रीरामचन्द्रजी ने विलाप करते हुए यशस्वी भरतजी को समझाया॥ १४॥

सर्वेक्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥१६

जहां संयोग है वहां वियोग है जहां उन्नति है वहाँ अवनति है जहां संग्रह है वहां नाश है जहां जीवन है वहां मरण है॥ १६॥

यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयम्।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम्॥१७॥

जिस प्रकार फल पक कर गिरता अवश्य है उसी प्रकार जन्म वाले का मरण निश्चित है॥ १७॥

यथा गारंदृढ स्थूलंजीर्णं भूत्वावसीदति।
तथा व सीदन्ति नरा जरा मृत्यु वशंगताः॥१८

जिस प्रकार मजबूत खंभे वाला मकान भी पुराना होने पर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार जरा और मृत्यु के वश पड़े हुए मनुष्य नष्ट हो जाते हैं॥ १८॥

अहोरात्राणि गच्छन्तिसर्वेषां प्राणिनामिह।
आयूंषिक्षपयन्त्याशु ग्रीष्मेजलमिवांशवः॥२०।

दिन रात बीत रहे हैं और संसार में सभी प्राणियों की आयु का नाश कर रहे हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें जलका नाश करती हैं॥२

आत्मानमनुशोचत्वंकिमन्यमनुशोचसि।
आयुस्तुहीयते यस्य स्थितस्यार्थं गतस्य च।॥२१

हे भरत! तुम अपने लिए (अपने आत्मा के उद्धार के लिए) सोचो, दूसरों के लिए क्यों सोचा करते हो। आयु तो सबकी घटती रहती है चाहें कोई चलता रहे चाहें बैठा रहे॥ २१॥

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे।
समेत्यतुव्यपेयातां कालमासाद्य कंचन॥ २६।
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवोह्येषां विनाभवः॥ २७

जैसे समुद्र में बहते हुए दो काष्ठ कभी मिल जाते हैं कभी अलग हो जाते हैं उसी प्रकार स्त्री पुत्र कुटुम्ब और धन कभी मिल जाते हैं कभी बिछुड़ जाते हैं इनका वियोग अवश्यंभावी है

नात्रकश्चिद्यथाभावंप्राणी समतिवर्तते।
तेनतस्मिन्न सामर्थ्यं प्रेतस्यास्त्यनुशोचतः॥२८

हे भरत! इस संसार में कोई भी प्राणी यथाभिलाष (अपनी मर्जीतक) अपने भाई बंधुओं के साथ सदा नहीं रह सका। मौत पर किसी का वश नहीं। अतः मरे के लिये शोक करना व्यर्थ है॥ २८॥

वीर्य बनाता है उससे अधिक वीर्य को बर्बाद करने का हेतु बन जाता है। और नहीं तो स्वप्नदोष से ही वीर्य नष्ट होने लगता है। ऐसा भोजन शक्ति बढ़ाने की बजाय उल्टा शक्ति क्षीण करता है। यदि हम उसमें मिर्च मसाले आदि तीक्ष्ण पदार्थ न मिलावें और दूसरे उत्तेजित पदार्थों का भक्षण छोड़दें तो वीर्य की रक्षा स्वयं ही हो जायगी और शारीरिक शक्ति का चमत्कार सामने आने लगेगा।

यह है शारीरिक बल प्राप्त करने की कुंजी। थोड़े दिनों रसना इन्द्री पर थोड़ा सा कन्ट्रोल करना पड़ेगा। काम शक्ति अपने आधीन हो जायगी आग में ईंधन डालते रहोगे तो परिश्रम से भी नहीं बुझ सकेगी। इसलिए हमें बलवान बनने के लिए वीर्य रक्षा करनी चाहिए और वीर्य रक्षा तभी संभव है जब हमारा आहार विहार सात्विक हो।

———

यथाहि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित्पथि स्थितः ।
अहमप्या गमिष्यामि पृष्ठतो भवता मिति ॥ २९ ॥

जिस प्रकार यात्रियों का दल रास्ते पर चला जाता है और राह में बैठा हुआ मनुष्य कहे कि तुम्हारे पीछे हम भी आते हैं ॥ २९ ॥

एवं पूर्वैर्गतोमार्गः पैतृ पितामहैध्रु वम् ।
तमापन्न कथंशोचेद्यस्य नास्तिव्यतिक्रमः ॥ ३० ॥
वयसः पतमानस्य स्रोतसोवानिवर्तिनः ।
आत्मासुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजास्मृताः ॥३१

इसी प्रकार बापदादे परदादों के चले हुए मार्ग पर आरूढ़ मनुष्य को क्यों शोच करना चाहिये । क्योंकि उस मार्ग पर चलने के अतिरिक्त और कोई गति नहीं ॥ ३० ॥

जिस प्रकार नदी की धार आगे ही बढ़ती है पीछे नहीं लौटती उसी प्रकार आयु घटती ही है बढ़ती नहीं यह देखकर आत्मा को सुखके साधन भूत धर्म कृत्यों में लगना उचित है क्योंकि यह प्रजा धर्म कृत्य करते हुए सुख भोगने के लिए है ॥ ३१ ॥

सर्वेक्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रया ।
संयोगाविप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ ११

संचय के साथ क्षय अवश्य है जहां उत्थान है वहां पतन है जहां संयोग है वहां वियोग है जहां जीवन है वहां मरण है ॥ ११ ॥

पिता के शोक से दुखी भरत को श्री वशिष्ठ जी ने इस प्रकार समझाया--

शरीरं जड मत्यर्थ मपवित्रं विनश्वरम् ।
विचार्यमाणेशोकस्यनावकाशः कथञ्चन ॥ ९६ ॥
(अध्यात्मरामायण अयो० स० ७)

शरीर जड़ अपवित्र नाशवान् है विचार करने पर इसके नाश होने में शोक के लिए कोई स्थान नहीं ॥ ९६ ॥

तंशोचसि वृथैवत्व मशोच्यं मोक्षभाजनम् ।
आत्मानित्योऽव्ययः शुद्धोजन्म नाशादिवर्जितः ॥९५

वे सर्वथा अशोचनीय मोक्ष के पात्र थे उनके लिये तुम वृथा शोक करते हो । आत्मा तो नित्य, अविनाशी, शुद्ध और जन्म नाशादि से रहित है ॥९५

पिता वा तनयोवापि यदि मृत्युवशंगतः ।
मूढास्तमनुशोचन्ति स्वात्मताडनपूर्वकम् ॥ ९७ ॥

यदि कोई पिता या पुत्र मर जाता है तो मूर्ख उसके लिए शिर फोड़ते हुए रोते हैं ॥ ९७ ॥

निःसारेखलु संसारे वियोगो ज्ञानिनांयदा ।
भवेद् वैराग्यहेतुः स शान्ति सौख्यं तनोति च ॥९८

इस प्रकार संसार में यदि ज्ञानियों को किसी से वियोग होता है तो वह उनके लिए वैराग्य का हेतु होता है सुख तथा शान्ति का विस्तार करता है ॥ ९८ ॥

जन्मवान्यदि लोकेऽस्मिंस्तर्हितंमृत्युरन्वगात् ।
तस्माद परिहार्योऽयं मृत्युर्जन्मवतांसदा ॥ ९९ ॥

यदि किसी ने इस लोक में जन्म लिया है तो मृत्यु भी अवश्य ही उसके साथ लगी है ॥९९॥

स्वकर्म वशतः सर्वजन्तूनां प्रभवाप्ययौ ।
विजानन्न प्यविद्वान्यः कथंशोचतिबांधवान् ॥१००

अपने कर्मानुसार ही सब जीवों के जन्ममरण होते हैं यह जानकर भी मूढ़ लोग बंधु बांधवों के लिये क्यों शोक करते हैं ॥ १००

ब्रह्माण्डकोटयोनष्टाः सृष्टयो बहुशोगतः ।
शुष्यन्ति सागराः सर्वे कै वास्थो क्षणजीविते ॥१०१

करोड़ों ब्रह्माण्ड नष्ट हो गए अनेकों सृष्टियां बीत गयीं । सम्पूर्ण समुद्र एक दिन सूख जायँगे फिर इस क्षणिक जीवन में क्या आस्था की जाय ॥ १०१ ॥

चलपत्रान्त लग्नाम्बु विन्दुवत्क्षणभंगुरम् ।
आयुस्त्यज्यत्यवेलायां कस्तत्रप्रत्ययस्तव ॥ १०२

यह आयु हिलते हुए पत्ते की नोक पर लटकती हुई जलबिंदु की समान क्षणभंगुर है असमय छोड़कर चली जाती है उसका तुम क्या विश्वास करते हो ॥ १०२

देही प्राक्तन देहोत्थ कर्मणा देहवान् पुनः ।
तद् देहोत्थेन च पुनरेवंदेहः सदात्मनः ॥ १०३ ॥

इस जीवात्मा ने अपने पूर्व देह कृत कर्मों से यह शरीर धारण किया है और फिर इस देह के कर्मों से यह शरीर धारण करेगा इसी प्रकार आत्मा को बार बार शरीर की प्राप्ति होती है ।

इतिसम्बोधितः साक्षाद् गुरुणा भरतस्तदा।
विसृज्याज्ञानजं शोकं चक्रे स विधिवत् क्रियाम्१०६

तब गुरु वशिष्ठजी के इस प्रकार समझाने पर भरतजी ने अज्ञान जन्यशोक छोड़कर पिता का अन्त्य कृत्य किया।। १०६

हिरण्याक्ष के मारे जाने पर शोकाकुल माता दिति को हिरण्यकशिपु समझाता है कि--

भूतानामिहसंवासः प्रपायामिव सुव्रते । दैवे नैकत्रनीताना मुन्नीतानां स्वकर्मभिः।।भा०।७।२।२१

प्राणियों का जो समागम है वह प्याऊपर इकट्ठे हुए पुरुषों के समान है दैवयोग से इकट्ठे हो जाते हैं फिर बिछुड़ भी जाते हैं।

एक वृक्ष समारूढा नाना वर्णविहङ्गमाः।
प्रभातेदिक्षु दशसु तत्रका परिदेवना।।चाणक्यनीति

सायंकाल को एक वृक्ष पर अनेक दिशाओं से आकर अनेक प्रकार के पक्षी इकट्ठे हो जाते हैं प्रातःकाल होते ही चारों तरफ चले जाते हैं तो उसमें दुख किस बात का ?

एकेऽद्य प्रातरपरे पश्चादन्येपुनः परे।
सर्वेनिःसीम्नि संसारे यान्ति कः केनशोच्यते।।

कोई आज कोई कल कोई परसों इस प्रकार सब ही इस सीमा रहित संसार में चले जारहे हैं तब कौन किसके लिए शोक करे ?

येषांनिमेषोन्मेषाभ्यां जगतां प्रलयोदयौ ।
तादृशाः पुरुषा यातामादृशां गणनैवका।।

जिनके पलकों के खोलने मीचने से संसार की रचना व प्रलय होता है ऐसे पुरुष भी जब चले गये तब हम सरीखे पुरुषों की क्या कथा।

पृथिवी दह्यते यत्र मेरुश्चापि विशीर्यते।
सुशोषंसागर जलं शरीरे तत्रकाकथा।।

जहां प्रलय काल के समय पृथिवी जल जाती है सुमेरु पर्वत खंड २ हो जाता है समुद्रों का जल सूख जाता है तब इस शरीर की क्या कथा।

एकसार्थ प्रयातानां सर्वेषां तत्रगामिनाम्।
यद्येक स्त्वरितं यातस्तत्र का परिदेवना।।

किसी स्थान को एक साथ आने वालों में से कोई एक शीघ्रता से चल गया तो उसमें दुख किस बात का ?

माता पितृ सहस्राणि पुत्रदार शतानिच ।
तवानन्तानि यातानि कस्यते कस्यवाभवान्।।

तेरे हजारों माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि अनन्त होगये किसका तू और वे किसके अर्थात् कोई किसीका नहीं।

माशोकं कुरुतानित्ये सर्वस्मिन्प्राण धर्मणि।
धर्मं कुरुत यत्नेन यो वःसह गमिष्यति ।। ४

सम्पूर्ण प्राणी अनित्य हैं इस कारण मृत्यु प्राप्त का शोक न करे। यत्न पूर्वक धर्म कार्य को करो यह धर्म ही तुम्हारे साथ जायगा।

गंत्रीवसुमतीनाश मुदधिर्दैवतानिच।
कें न प्रत्ययः कथंनाशं मर्त्यलोको नयास्यति।। ६

पृथ्वी, समुद्र, देवता, जब सभी का नाश है तो इस मृत्युलोक में किसका नाश न होगा ।। ६

पंचधा संभृतः कायो यदि पंचत्वमागतः।
कर्मभिःस्व शरीरोत्थैस्तत्रका परिदेवना ।। ७

पाँचों भूतों से बना हुआ यह देह यदि देह धारण जनित कर्मों के फल में पञ्चत्व को प्राप्त हो जाय तो इसमें शोक किस बात का । (कात्यायन स्मृ० २२। याज्ञ० ३। ८। ६-१०)

शैतान सब आदमियों को बहकाता है किन्तु आलसी आदमी शैतान को बहकाता है।

+ + +

अपने बच्चों को पहला पाठ आज्ञापालन का सिखाओ और दूसरा जो तुम्हारी इच्छा हो।

+ + +

हमें ईश्वर का सच्चा साक्षात्कार तभी होता है, जब हम उसके सामने अपनी याचनाएँ लेकर किन्तु अपनी भेंटें लेकर जाते हैं।

+ + +

यदि कोई चाहे कि वह दुनिया में अपना स्व साधन भी करे और ईश्वर को भी प्राप्त कर तो यह असम्भव है। + +

सुधार से बहुत कुछ होता है, किन्तु प्रोत्स से और भी अधिक होता है ।। डांट के पश्च प्रोत्साहन ऐसा है जैसा वर्षा के बाद धूप।

क्या हम अभागे हैं ?

मानव जीवन एक अमूल्य सुअवसर है। सृष्टि के समस्त जीव जन्तुओं की स्थिति पर दृष्टि पात कीजिए, उनमें से एक भी ऐसा नहीं है जिसे मनुष्य के समान ऊँची स्थिति प्राप्त हो। बहुत थोड़े प्राणी ऐसे हैं जो शारीरिक दृष्टि से मनुष्य से अधिक सक्षम हैं। जो हैं उनकी आयु थोड़ी है। घोड़ा, गधा, बैल, भैंस, हिरन, रीछ, भेड़िया, कुत्ता, सिंह, आदि बड़े हुए दर्जे के पशु प्रायः बीस पच्चीस वर्ष से अधिक नहीं जीते। छोटे दर्जे के लोमड़ी, खरगोश, भेड़, बकरी आदि पशु तो दस वर्ष से भी पहले मर जाते हैं। हाथी, सर्प, गिद्ध, कछुआ सरीखे दस पांच प्राणी ही ऐसे ही जो मनुष्य से अधिक जीवित रहते हैं। कीट, पतंग, उद्भिज, अंडज, जीव जन्तुओं की की आयु और शारीरिक शक्ति तो मनुष्य की तुलना में अत्यन्त ही न्यून है।

सभी पशु पक्षियों की अन्तः चेतना मनुष्य की अपेक्षा कम है। मन बुद्धि, चित्त, अहंकार का चतुष्टय इतना अद्भुत है कि इस विशेष उपहार के द्वारा मानव जीवन की सरसता अनेक गुनी बढ़ गई है। बेचारे पशु पक्षी भोजन, निद्रा, प्रजनन तथा शरीर रक्षा के अतिरिक्त और कोई विशेष इच्छा आकांक्षा नहीं करते और न इनके अतिरिक्त अन्य किसी विषय में उन्हें आनंद आता है। यह चार बातें ही उनका सारा जीवन काल समाप्त कर देती हैं। मनुष्य को इससे अनेक गुनी सुविधा मिली हुई हैं, उसका मन सुविकसित होने के कारण आनन्द और मनोरंजन के सैकड़ों मार्ग खुले हुए हैं। संगीत, साहित्य, कला, निर्माण, अन्वेषण, इन्द्रिय तृप्ति, पर्यटन, निरीक्षण, क्रीड़ा, विनोद, संगति, मैत्री, नेतृत्व, कल्पना, संचय, उपार्जन, प्रशंसा, उपकार आदि नाना प्रकार से मनोरंजन कर सकता है। उसमें इतना बुद्धि कौशल मौजूद है कि स्थूल शरीर की साधारण समस्याओं को आसानी से हल कर लेता है। आठ घंटे के परिश्रम में एक अशिक्षित मजदूर भी इतना कमा लेता है कि उसका तथा उसके आश्रित कई परिजनों का जीवन निर्वाह होजाता है। शेष सोलह घंटे उसे अन्य मार्गों से जीवन का आनन्द प्राप्त करने के लिए बच जाते हैं। चतुर मनुष्य तो इससे भी कम समय में स्वल्प श्रम से इतना अधिक कमा लेते हैं कि वे उनकी साधारण एवं स्वाभाविक आवश्यकता से वह कहीं अधिक होता है। यह सुविधा सृष्टि के किसी अन्य प्राणी को प्राप्त नहीं है, उन्हें तो शरीर यात्रा में ही समय बिताना पड़ता है और क्षुधाओं के निवारण की तृप्ति से ही संतुष्ट होना पड़ता है।

हममें से कई व्यक्ति अपने से अधिक धनी, सम्पन्न, शिक्षित, चतुर, सशक्त, सुन्दर व्यक्तियों से तुलना करके अपने आपको हीन, दरिद्र, दुखी, अनुभव किया करते हैं। सोचने का यह तरीका बहुत ही गलत, दूषित एवं भ्रमपूर्ण है। इस दृष्टि से तो ईर्षा का कभी अन्त न होगा। जैसे जैसे अधिक सम्पन्नता बढ़ेगी वैसे वैसे तृष्णा और दीनता का दर्द भी अधिक होगा। कभी शान्ति न मिलेगी। सम्पत्तियों का कोई अन्त नहीं, एक से एक बढ़े पड़े हुए हैं, उनसे अपनी तुलना करके दीन भाव मन में लाने की आवश्यकता नहीं, मानव प्राणी किसी भी दशा में दीन हीन नहीं है।

परमात्मा ने हमें सर्व श्रेष्ठ मानव जीवन प्रदान किया है। इसके आनंदों का ठिकाना नहीं, इसके द्वारा आत्म कल्याण का सर्वोपरि मार्ग उपलब्ध होता है। गरीब से गरीब आदमी भी अपने अन्तःकरण चतुष्टय द्वारा इतने अधिक आनन्दों को प्राप्त करता है जिनके कारण उसे एक स्वर से सौभाग्यशाली, सम्पन्न तथा ऐश्वर्य वान् कहा जा सकता है। इतने ऊँची स्थिति को प्राप्त करके हमें प्रसन्न होना चाहिए। इतना महत्व प्राप्त करने पर भी जो अपने को गिरी हुई स्थिति में अनुभव करता है, भाग्य को कोसता है, ईश्वर को दोष लगाता है, उसे क्या कहा जाय?

देश काल और पात्र का ध्यान-रखो।

(श्रीलक्ष्मीनारायणजी टंडन प्रेमी एम.ए. लखनऊ)

देश काल और पात्र के अनुसार धर्म नियमों में अवश्य अंतर हो सकता है। पश्चिमीय देशों में चुम्बन करना मिलने या विदा होने पर एक भद्रता का चिन्ह है हमारे यहां अपनी स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्री का चुम्बन करना पाप है। अपनी स्त्री का भी चुम्बन हम एकान्त में करते हैं किन्तु अंगरेज सबके सामने बिना किसी झिझक के यह करता है।

अपने ही देश में एक समय के नियमों का दूसरे समयों में पालन नहीं किया जा सकता। एक समय में "नियोग" धर्म था। अब कोई भी तैयार न होगा। एक समय "सती प्रथा" पुण्य-कार्य था, आज वह अवाञ्छनीय है। संसार परिवर्तन शील है। अतः जो कल के लिये लागू था वह आज के लिये भी लागू होगा ऐसा नहीं कहा जा सकता है। मुख्य प्रवाह-धारा को बाधा न देकर यदि बहाव को इधर उधर घुमाया जाय तो उससे लाभ ही होता है। रानाडे ने एक बार कहा था कि सुधारक को कोरी पटिया पर नहीं लिखना है। उसे तो अधूरे वाक्यों को पूरा करना तथा माली की भांति कांट-छांट करना है। धर्म नियमों में परिवर्तन हो सकता है और होना चाहिये इसके साक्षी स्वयं हमारे ही 'धर्म' हैं। "अपवाद" शब्द इसी बात का द्योतक है। एक स्वस्थ मनुष्य को नहा-धोकर पूजा पर बैठना चाहिये किन्तु एक अस्वस्थ रोगी खाट पर पड़े २ मानसिक पूजा करने का अधिकार धर्म द्वारा पा जाता है। यह अपवाद क्या है? यह प्रमाण है कि धर्म नियमों में अन्तर हो सकता है।

मान लीजिये आप आर्कटिक सरकिल में ग्रीनलैंड में चले जायँ, यदि वहां आप नित्य नहा कर रेशमी कपड़ा पहन कर पूजा करने बैठें तो स्वयं बरफ हो जायँगे। जब आप रोगी हों और प्राण का खतरा हो तो डाक्टर के बताये अनुसार यदि शराब या प्याज खायँ तो यह भी धर्म है। वैसे ही एक अधिकारी मूर्ति को ईश्वर नहीं समझेगा किन्तु ईश्वर के भाव आरोपित करेगा किन्तु अशिक्षित गवांर को उसे ही ईश्वर समझने दीजिये। उसके लिए धर्म यह रियायत करता है। अतः अन्तर हो सकता है धर्म नियमों में, देश काल और पात्र के अनुसार।

एक बार गंभीरता पूर्वक सृष्टि के समस्त जीवजन्तुओं की स्थिति पर एक एक करके विचार कीजिए। केंचुआ, मछली, मक्खी, मकड़ी, मेंढक, कछुआ, कबूतर, सारस, बकरी, गधा, बैल आदि की कठिनाइयों पर अपनी कल्पना शक्ति को केन्द्रित कीजिए, उनकी दिनचर्या, कठिनाई, असुविधा, विवशता तथा आनन्द की तुच्छता पर विचार कीजिए तब आपको प्रतीत होगा कि मनुष्य की अपेक्षा कितने पिछड़े हुए हैं यदि वे बेचारे ईर्षा कर सकते तो हमारे लिए कहते कि उनकी अपेक्षा हम उतने सुखी एवं उन्नत है जितना कि हम अपने से ऊँचा स्वर्ग लोग के देवताओं को समझते हैं।

इतना आगे बढ़े चढ़े होते हुए भी सिर्फ इसलिए अपने को अभागा मानना कि चार आदमियों के पास हमसे भी अधिक धन, या चतुरता या सुविधा है—कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। हमें चाहिए कि अपने मनुष्य जीवन की महानता को पहचानें। अपनी शक्तियों, सम्पत्तियों और सुविधाओं को अनुभव करें, अपने सौभाग्य को सराहें और इस सुअवसर का अधिक उत्तम सदुपयोग करने का प्रयत्न करें जिससे और भी आनन्द मय भविष्य का निर्माण हो।

ग्लानि और दुःख के समय तथा आत्म-शुद्धि और चित्त की एकाग्रता के लिए उपवास बहुत सहायक होता है।

+ +

मठा पिया कीजिए।

न तक्र सेवी व्यथते कदाचित्—
न तक्र दग्धा प्रभवन्ति रोगा।
यथा सुराणाममृतं सुखाय,
तथा नराणाम् भुवितक्रमाहुः॥

अर्थात्—तक्र यानी मठा सेवन करने वाला मनुष्य कभी रोगों के जाल में नहीं फँसता। और रोगी मनुष्य का तक्रसेवन से रोग जल जाता है और तक्र से जला हुआ रोग पुनः उत्पन्न नहीं होता। जिस प्रकार से देवलोक में अमृत हितकर है। ठीक उसी प्रकार भूमिलोक पर मठा मनुष्यों का हितकारक है।

मठा पांच प्रकार का बनाया जाता है। (१) घोल (२) मथित, (३) तक्र (४) उदश्वित और (५) छच्छिका।

(१) घोल—मलाई के सहित बिना जल डाले जो दही को मथा जाता है, ऐसे मठे को घोल कहते हैं। इसमें शक्कर मिलाकर खाने से वात पित्त का नाश करता तथा आनन्द देता है।

(२) मथित—मथित और घोल में इतना ही अन्तर है कि मथित में से मलाई अलग कर देते हैं। यह कफ और पित्त का नाश करता है।

(३) तक्र—जिसमें मथते समय दही का चौथाई भाग पानी डाल दिया जाय। यह मल को रोकने वाला, कसैला, खट्टा, पाक में मधुर है और हलका है। उष्णवीर्य (गरम) अग्नि दीपक, वीर्य वर्धक, पुष्टिकारक और वात नाशक है।

(४) उदश्वित—जिसमें दही का आधा भाग जल मिले। यह कफ कारक बल बढ़ाने वाला और आम का नाश करता है।

(५) छच्छिका—(छाछ) जिससे मलाई निकाल ली गई हो और मथ कर बे हिसाब जल मिलाया जाय। यह शीतल, हलका, पित्त, प्यास और थकावट को दूर करता है। सेंधा नमक और वायुनाशक है।

अब दुग्धभेद से मठे के गुणों को भी देखिये। दुग्धभेद से मठा अनेक प्रकार का हो सकता है। यथा, गाय, भैंस, बकरी, भेड़, घोड़ी ऊँटनी आदि के दूध से भी मठा बन सकता है परन्तु हम यहां केवल गाय, भैंस, तथा बकरी के मठे के गुणों की ही चर्चा करेंगे। गाय का मठा बवासीर और उदर विकार को नाश करता है। तीनों दोषों को शान्त करता है। यह दीपन, रुचि कारक और बुद्धि वर्धक है। शरीर में बल वर्धक और हृदय को शक्ति देने वाला है। गाय का मठा सब मठों से विशेष गुणकारी है।

बकरी की मठा—संग्रहणी, वायुगोला, बवासीर, शूल और पाण्डु रोग को नष्ट करता है। यह हलका और चिकना होता है। तीनों दोषों को शान्त करता है और श्वांस, कास में बड़ा गुणकारी है। भैंस का मठा, अतिसार बवासीर संग्रहणी और प्लीहा नाशक है। यह कफकारी है तथा वातपित्त को शान्त करता है।

चरक में लिखा है कि तक्र दीपन, ग्राही और हलका होने के कारण ग्रहणी रोग में हितकर है। पाक में मधुर होने के कारण पित्त प्रकोप से बचाता है। मधुर, अम्ल, और चिकना होने से वायु नाशक है। कषाय और उष्ण होने से कफ में हितकर है।

प्रो. ह्यूकले और मैशिनी काफ आदि प्रसिद्ध जन्तु शास्त्र विशेषज्ञों का मत है कि मठे में लैक्टिक जन्तु रहते हैं जो शरीर के विषैले कीड़ों का नाश करके हमारे शरीर के लिये विशेष उपकारी होते हैं।

ऋतुओं के अनुसार मठे का सेवन निम्न लिखित वस्तुओं के साथ करना अधिक लाभदायक होता है—

हेमन्त, शिशिर और वर्षाऋतु में मठा या दही खाना उत्तम है, किन्तु शरद बसंत और ग्रीष्म में प्रायः यह हानिकारक है। दही या मठा कफ कारक है साथ ही पित्त को भी बढ़ाता है इस कारण बसन्त में हानिकारक होता है। क्यों

कि इस ऋतु में तो कफ स्वयं ही बढ़ जाता है और रोग उत्पन्न करता है। ग्रीष्म ऋतु और शरद ऋतु में पित्त कुपित होजाता है इस कारण पित्त गुण वाला दही इन ऋतुओं में हानिकारक है। इसलिये भिन्न २ ऋतु में मठा भिन्न २ प्रकार से सेवन करना चाहिये।

वर्षा ऋतु में सैंधानमक, ग्रीष्म और शरद में चीनी, तथा शिशिर और बसन्त में सोंठ, पीपल, मिर्च और जवाखार मिलाकर मठा सेवन करना चाहिये। इस प्रकार ऋतु अनुसार तक सेवन से विशेष उपकार होता है।

मठे में निम्न गुण विशेष पाये जाते हैं। क्षुधा को बढ़ाता है। आँखों की पीड़ा को शान्त करता है और जीवनी शक्ति को बढ़ाता है। शरीर में मांस और रक्त की कमी को दूर करता है। आम को नष्ट करता तथा कफ और वायु को शान्त करता है।

इन्हीं गुणों को ध्यान में रखते हुए आयुर्वेद में स्वस्थ रहने के उपायों का निरूपण करते हुए लिखा है कि—

भोजनान्ते पिबेत्तक्रम्,
निशान्ते च पिबेज्जलम्।
निशा मध्ये पिबेद्दुग्धम्,
किं वैद्यस्य प्रयोजनम्॥

अर्थात्—जो मनुष्य प्रातःकाल उठते ही जल पीता है, और भोजन के अनन्तर मठे को व्यवहार करता है तथा शयन समय में दूध पीकर सोता है। उसे कभी किसी वैद्य या डाक्टर की आवश्यक्ता नहीं होती है। यानी मठे में अनेकों ऐसी विशेषतायें भरी पड़ी हैं। जिनका सर्वांशतः कह देना बड़ा दुष्कर है। मठे से कायाकल्प तक किया जाता है।

उपवास एक प्रकार का प्रायश्चित है। इससे पतित को अपने दोषों का भान और अनुमान होता है। इससे मन हलका और शान्त होता है।

\+ \+ \+

अपने दोषों को भी देखिए

पर छिद्रान्वेषण अर्थात् दूसरों के दोष देखना उनकी कमजोरियां निकालना, उनकी आलोचना करना मनुष्य को दोषी बनाता है किन्तु अपने दोषों को देखना और उनका निवारण करना आत्मोद्धार का अचूक उपाय है। महापुरुषों का वचन है—

यथाहि निपुणः सम्यक् परदोषेक्षणं प्रति
तथाचेन्निपुणः स्वेषु को न मुच्येत बन्धनात्।

अर्थात् "जैसे पुरुष परदोषों का निरूपण करने में अति कुशल है, यदि वैसे ही अपने दोषों को देखने में हों, तो ऐसा कौन है जो संसार के कठोर बन्धनों से मुक्त न हो जाय।" महापुरुष बनने का मार्ग आत्मशुद्धि है अतः चुनचुन कर अपने दोषों को निकाल डालिये। क्या आपके मन में दुर्बल विचार वासना से सनी हुई कुकल्पनाएँ आती हैं? क्या आप ईर्षा द्वेष,क्रोध व्यभिचार में लिप्त हैं? क्या शरीर के साज श्रृंगार के बन्धन आपको बांधे हुए हैं? इन प्रश्नों का स्वयं उत्तर दीजिये। सचाई से आत्मविश्लेषण कीजिये।

अपने साथ कठोर रहिये, निष्पक्ष आलोचक बनिये। जो दोष हैं, उनके निवारण के लिए भीष्म प्रतिज्ञा कीजिये। उठिये, अपनी इन्द्रियों को वश में कीजिए और ब्रह्मचारी कहलाइए। अपनी इन्द्रियों की रखवाली वैसे ही करो जैसे एक कर्तव्यनिष्ठ सिपाही खजाने के दरवाजे की करता है। आत्मशुद्धि का मार्ग सर्वोत्तम है अतः इन्द्रियों के दरवाजे पर गलतफहमी न होने देना। इन्द्रियों पर पाप का कब्जा न होने पावे अन्यथा धर्म का खजाना रिक्त हो जावेगा। मन के संयम से स्वर्ग मिलता है, ब्रह्म के दर्शन होते हैं किन्तु अनियन्त्रित इन्द्रियां और विशेष कर कामेन्द्रियां तो प्रत्यक्ष नर्क की ओर दौड़ती हैं।

आप डरें क्यों ?

(श्री किशोरीलालजी मशरुवाला)

'मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है—भय का नाश करना। हमें भय से मुक्त हो ही जाना चाहिये। जब तक निर्भय न होंगे, हम कुछ न कर सकेंगे। आदमी जब तक डरको अपने पैरों तले कुचल नहीं देता, उसके सभी कामों में गुलामों की-सी मनोवृत्ति और ऊपर का भपका-भरा रहता है, उसके विचार भी गुलामों और कायरोंके-से रहते हैं। —हीरोवर्शिप, कार्लाइल

मनुष्य निर्भय कैसे हो ? इसका ठीक-ठीक जवाब तो वही दे सकता है, जिसने डरको भली भाँति जीता है। मैं अपने लिये इसका दावा नहीं कर सकता। फिर भी अपने जैसों के साथ विचार करने का यत्न करता हूं।

एक किस्सा सुना है। किसी पंडितने एक खलासी से पूछा—'तुम्हारे बाप की मौत कैसे हुई ?' खलासी ने कहा—'एक बार जब वह जहाज पर सवार थे, जोरों का तूफान उठा, और तूफान में जहाज के साथ वह भी डूब गये।' पंडितने पूछा—'और, तुम्हारे दादा ?' खलासी—'सुना है, वह भी डूब ही गये थे, और उनके साथ मेरे दो चचा भी मर गये थे।' सुनकर पंडित तो दंग रह गये। कहने लगे—'भले मानस, इतना होने पर भी तुम पानी का धन्धा नहीं छोड़ते? तुम्हें डर नहीं लगता ?' खलासी ने पूछा:—'महाराज, आपके पिताजी की मौत किस तरह हुई थी ?' पंडितने कहा—'बहुत ही बूढ़े हो गये थे। कई दिनों तक बीमार रहे, और घरमें अपने बिछौने पर मर गये।' खलासी—'अच्छा, और उनके पिता ?' पंडित—'वे भी उसी तरह बिछौने पर ही मरे।' खलासी—'फिर भी आप बिछौने पर सोते हैं ? आपको डर नहीं लगता ?'

इन्हीं लोगों की विवाह-पद्धतिका भी एक किस्सा सुना है। कहा जाता है, ब्याह के समय पुरोहित कन्या से पूछता है—'देखो बहन, यह दूल्हा दरिया में अपनी जिन्दगी बितायेगा, मस्तूल पर चढ़ेगा, और वहाँ से गिरेगा। तूफान उठेगा और उसमें यह घिरेगा। बोलो, यह दूल्हा तुम्हें पसन्द है ?' कन्या कहती है—'पसन्द है।' पुरोहित—'तो समझो, तुम्हारा ब्याह हो चुका आसीस देता हूं'।

एक बनिये के लड़के को किसीने कहा—'दोमें से कोई एक चीज पसंद कर लो—या तो अंधेरी रात में दस हजार रुपयों की थैली लेकर एक भयावने जंगल को पार कर आओ और थैली के मालिक बन जाओ, या पूर्वी अफ्रीका-जैसे किसी कमाईवाले देश में हजार रुपये लेकर चले जाओ और अपनी तकदीर आजमा लो! बोलो, क्या पसन्द करते हो ?' लड़के ने छूटते ही कहा—'दूसरी चीज'। अंधेरी रात में इतनी बड़ी रकम के साथ अकेले जंगल पार करना उसे ज्यादा मुश्किल मालूम हुआ। अगर किसी राजपूत के लड़के से वही सवाल किया जाता, तो शायद वह पहली चीज पसंद करता। हजार रुपये की पूंजी पर रोजगार करने की बात में शायद उसे डर मालूम होता।

देहातियों को अंधेरी रात में बिना चिराग के कहीं भी आने में कोई खटका नहीं मालूम होता। शहर वाले अपने मकान के अहाते में भी बगैर चिराग के जाने की हिम्मत नहीं करते। जंगलों और पहाड़ों में रहने वाले लोगों को शेर वगैरा का उतना डर नहीं लगता, जितना देहातियों और शहरियों को लगता है।

दूसरी तरफ, अगर किसी देहातीको कलकत्ता या बम्बई-जैसे शहर में लाकर अकेला छोड़ दिया जाय, तो वह इस कदर घबरा जायगा, मानो जंगली जानवरों के बीच छोड़ दिया गया हो!

इससे एक सबक यह सीखी जा सकता है कि जिस तरह के जीवन और परिस्थिति से हमें डर लगता हो, उसका हमें कुछ अनुभव कर लेना चाहिये। एक बार, दो बार, दस बार अनुभव करते करते डर कम हो जाता है।

बोलने का शऊर सीखिये।

(श्री रजेश जी)

मनुष्य के विचारों की थाह, योग्यता का परिचय और विद्या, बुद्धि तथा स्वभाव का पता उसकी बातों से मिलता है, इसलिए उसे अपने विचारों को प्रकट करने के लिए बात चीत में बहुत सावधानी से काम लेना चाहिये। बोलचाल में सावधानी की आवश्यकता इसलिए भी है कि प्रायः कभी कभी सम्भाषण की असावधानी के कारण ही क्रोध बढ़ जाता है। वास्तव में किसी कार्य की सफलता और असफलता उसके सम्बन्ध में कही जाने वाली बातचीत के ढंग पर ही निर्भर होती है। जो सभ्यता और शिष्टाचार पूर्वक बात करना नहीं जानता, लोग उससे बातें करना नहीं चाहते।

बोलते समय सुनने वाले की हैसियत (पद) के अनुसार 'तुम', आप अथवा 'श्रीमान' आदि शब्दों का उपयोग करना चाहिये। 'तुम' का प्रयोग अत्यंत साधारण स्थिति के लोगों के लिये और 'श्रीमान्' का उपयोग अत्यन्त प्रतिष्ठित सज्जनों के लिए किया जाना चाहिये। 'आप' शब्द इतना व्यापक है कि उसका उपयोग दोनों ही कोटि के लोगों के लिये किया जा सकता है। बहुत ही छोटे लड़कों के अतिरिक्त 'तू' का प्रयोग और किसी के लिये नहीं करना चाहिए।

किसी के प्रश्न के उत्तर में 'हां' या नहीं के लिये केवल सिर हिलाना असभ्यता का चिन्ह है। सभ्यता और शिष्टाचार के नाते इस प्रकार के उत्तर 'जी हां' या 'जी नहीं' आदि शब्दों में दिये जाने चाहिए। बात करने का ढंग रोचक होना चाहिये। इस प्रकार रुकर कर बातचीत न की जाये कि लोग सुनते सुनते ऊब जायें। बहुत देर तक केवल अपनी ही बात नहीं कहते रहना चाहिए। जहां तक सम्भव हो बातचीत 'सम्भाषण' के रूप में चलनी चाहिए, जिससे दूसरों को भी बोलने का अवसर मिलता रहे और श्रोता और वक्ता का अनुराग सम्भाषण के विषय में बना रहे।

कोई ऐसी बात न कहनी चाहिये जिससे सुनने वाले का जी दुखी हो। जहां तक हो सके बातचीत में कटाक्ष, व्यंग, आक्षेप, उपालम्भ और अश्लीलता से बचना चाहिये। अधिकार की अहम्मन्यता में भी किसी को कटुशब्द कहना असभ्यता का परिचय देना है। कुछ लोगों को बातचीत के बीच बीच में, 'जो है सो' 'क्या नाम है' आदि 'तकिया कलाम' कहने का अभ्यास पड़ जाता है। इन आदतों को सुधारना चाहिये, किन्तु दूसरों को उनके इन दोषों पर हँसना भी उचित नहीं है। बात चीत में सौगन्ध खाना बहुत बुरा है। बात बात में 'गंगा की कसम' या 'ईमान से' आदि शब्द कहना अभद्रता और ओछेपन का चिन्ह है इसलिये सभ्य मनुष्यों को इन आदतों से बचना चाहिये।

बिना किसी अनिवार्य अवश्यकता के किसी की जाति, वेतन, अवस्था, वंशावली आदि पूँछना उचित नहीं है। पूछते समय प्रश्नों की झड़ी नहीं लगानी चाहिए। यदि लगे कि कोई व्यक्ति जानबूझ कर आपके प्रश्न का उत्तर नहीं देरहा है या नहीं देना चाहता तो उस प्रश्न के लिए उसके पीछे नहीं पड़ना चाहिए। नये व्यक्ति का परिचय प्राप्त करने में उत्सुकता और जल्दबाजी से काम नहीं लेना चाहिये।

बात चीत रोचक और विनोदपूर्ण ढंग से चलनी चाहिये, परन्तु हरवक्त हंसी ठट्ठा करना हानिकारक है। कहने की शैली से आत्म प्रशंसा या श्रोता के लिये अपमान की झलक नहीं आनी चाहिए। भाषण में उपमा और रूपक का प्रयोग सावधानी से किया जाये, क्यों कि इनमें असावधानी बरतने पर अर्थ का अनर्थ होजाता है। कहावतों और महापुरुषों के सुन्दर वाक्यों के प्रयोग से बातचीत में सरसता और प्रमाणिकता आ जाती है किन्तु इन्हीं का आधिक्य के साथ

प्रयोग, बातचीत को बोझिल और नीरस बना देता है, इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

यदि लोग आपको चुपचाप देखकर आपसे कुछ कहने की आग्रह करें तो ऐसी दशा में आपको सुन्दर बात या मनोरंजक विषय छेड़कर अवश्य उनकी इच्छा-पूर्ति करनी चाहिये किन्तु आवश्यकता के बिना बात-बात में टांग अड़ाना बुरा है। यदि कहीं कुछ लोग आपस में बात चीत कर रहे हों तो वहां अचानक जाना और बीच में अपनी बात छेड़ देना बहुत ही बुरा है। उनकी बातें जाकर सुनना भी अशिष्टता है। किसी को अशुद्ध उच्चारण करते देखकर हँस देना असभ्यता है। दूसरे की बात समाप्त होने पर ही अपनी बात आरम्भ करनी चाहिये। यदि बोलने वाला लगातार बोलता ही जाये और आपको बोलने का अवसर ही न दे तो आवश्यकता पड़ने पर नम्रतापूर्वक बोलने वाले से अपने बोलने की अनुमति लेनी चाहिए।

जहां किसी की असम्भव बातों में हां में हाँ मिलाकर चापलूसी करना उचित नहीं है वहां न्याय संगत और सच्ची बात सुनकर दुराग्रह से उसका खंडन करना भी अनुचित है। किन्तु कुछ सीमातक दूसरे के मत का सम्मान और उसकी प्रशंसा करना और उसी प्रकार अपने मत के समर्थन में दूसरे के मत का खंडन करना सभ्य समाज में क्षंतव्य है। बातचीत में क्रोध के आवेश को रोकना चाहिये। जहां बहस मुबाहिसे के दौरान में कटु और उग्रशब्दों का प्रयोग होने की आशंका होने लगे वहीं बातचीत बन्द कर देना बुद्धिमानी है। नीति के अनुसार व्यंग वचनों का उत्तर व्यंग में देना उचित है तथापि शिष्टाचार के नाते आपको कम से कम एक बार उन्हें शान्ति पूर्वक सहन करना चाहिये। किसी की अनुपस्थिति में उसकी निन्दा करना अशोभनीय है। यदि बातचीत में किसी ऐसे सज्जन का उल्लेख हो तो उनके नाम के आगे या पीछे आदर सूचक शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। मतभेद का कारण उपस्थित होने पर किसी के मतका खंडन नम्रतापूर्वक, क्षमा-प्रार्थना करके, ऐसी चतुराई से करना चाहिये कि विरुद्ध मत वाले को बुरा न लगे।

काल, पात्र और स्थान के अनुरूप परिस्थितियां देखकर बात करनी चाहिये। नवयुवकों से वेदान्त की चर्चा करना जिस प्रकार उचित नहीं उसी प्रकार वयो वृद्ध लोगों को शृंगार रस की विशेषतायें बतलाना अशिष्टता का प्रमाण है। सड़क पर खड़े होकर अथवा चलते हुए दूसरे घर की किसी स्त्री से बातें करना अशिष्टता है। रोगी व्यक्ति से अधिक समय तक बातचीत करना या उससे रोग की भयंकरता का उल्लेख करना हानिकारक है। जिस जगह कोई व्यक्ति किसी विचारात्मक कार्य में संलग्न हो वहां जोर से बातचीत करके उसकी विचार-शृंखला में बाधा डालना उचित नहीं है। बातचीत के दौरान में यदि कोई आपसे आपके अनुपस्थित मित्र या सम्बन्धी की अनुचित निन्दा करे तो उसे नम्रता पूर्वक समझा कर मनाकर देना चाहिये। यदि वह इस पर भी न माने तो किसी बहाने से उसके पास से चला आना चाहिये। ऐसा करने से उसे आपकी अप्रसन्नता और अपने कार्य के अनौचित्यका कुछ आभास अवश्य हो जायेगा। जो स्वयं दूसरों की अकारण निन्दा नहीं करता उसके पास औरों को भी ऐसी निन्दा करने का साहस नहीं होता। सभ्य तथा शिक्षित समाज में पर-निन्दक को प्रायः अनादर की दृष्टि से देखा जाता है।

जो अपनी उच्च वृत्तियों की ओर ध्यान देता है। वह ऊँचा हो जाता है, जो सदा अपनी छोटी वृत्तियों की ओर ही आकृष्ट होता है, वह बारतव में छोटा रह जाता है।

\+ + +

नीच विचार हमारे सुख में भी हमें डंक मारते हैं और सद्विचार हमें कष्टों में भी सान्त्वना देते रहते हैं। + +

गहरी सांस लिया कीजिए।

(पं० रामनरायण शर्मा)

फेंफड़ों के द्वारा शरीर के भीतर का मैल रात-दिन बाहर निकला करता है। परंतु बहुत से लोग अपनी ही मूर्खता के कारण ही कुटेवों से फेंफड़ों को कमजोर कर लेते हैं। शरीर का जो अवयव नित्य प्रति काम में आता रहता है वह बलवान् बना रहता है। विपरीत इसके जिस अवयव का नित्य निन्य उपयोग नहीं किया जाता वह दुर्बल पड़ जाता है। जो लोग सीधे हाथ का ही अधिकतर उपयोग किया करते हैं उनका बायां हाथ सीधे हाथ की अपेक्षा कमजोर पड़ जाता है। इसी प्रकार जो लोग फेंफड़ों का बराबर उपयोग किया करते हैं उनके फेंफड़े बलवान् बने रहते हैं। लेकिन जो लोग फेंफड़ों का निरंतर उपयोग नहीं करते उनके फेंफड़े कमजोर पड़ जाते हैं। यदि तलाश किया जाय तो सौ में नव्वे मनुष्य ऐसे निकलेंगे जो फेंफड़ों का ठीक ठीक उपयोग नहीं करते। कोई पूछे कि फेंफड़ों का ठीक ठीक उपयोग होता किस तरह है? इस तरह होता है कि श्वास लेते समय जो वायु बाहर से भीतर जाती है उससे फेंफड़े पूरे पूरे भरे जायँ। हवासे जब फेंफड़े पूरे पूरे भरे जाते हैं, तब पहले पहल पेट और पेट के नीचे का भाग फूलता है। उसके बाद फिर छाती फूलती है। छोटे छोटे बालकों को सांस लेते और छोड़ते देखने से यह बात समझ में आसकती है। क्यों कि छोटी उम्र के बालक प्रायः कुदरती तरीके से सांस लेते हैं। लेकिन बड़े होने पर उन्हें स्कूल में टेढ़े झुककर बैठने की आदत पड़ जाती है, और वे कमर कसकर धोती बांधने लगते हैं। इससे उनका पेट वगैरह दबा रहता है और इस कारण फेंफड़ों के नीचे का भाग भीतर गये हुए सांस से पूरा पूरा नहीं भर पाता। अतएव केवल छाती और फेंफड़ों का ऊपरी भाग ही श्वास लेने और निकालने का काम करता है। फेंफड़ों के नीचे का भाग काम में न आने के कारण दुर्बल पड़ जाता है। अतएव शरीर के आरोग्य के लिए जितनी हवा की जरूरत है उतनी हवा फेंफड़ों में नहीं आती, और परिणाम इसका फिर यह होता है कि शरीर के भीतर से फेंफड़ों द्वारा जितना मैल बाहर निकलना चाहिए उतना नहीं निकलता। इसलिए फेंफड़ों को पूरा पूरा हवा से भरने की और पूरा पूरा खाली करने की आदत प्रत्येक व्यक्ति को डालना बहुत जरूरी है। शास्त्रों में जो कहा गया है कि प्राणायाम करने वालों का आरोग्य बढ़ता है और उनके अनेक प्रकार के रोग मिट जाते हैं, उसका अभिप्राय यही है कि फेंफड़ों में पूरी पूरी हवा भरने से और पूरी पूरी निकालने मे उनके द्वारा शरीर के भीतर का बहुत सा मैल नित्यप्रति बाहर निकल जाता है। जिन लोगों को श्वास की बीमारी होती है वे न तो पूरा पूरा श्वास ले सकते हैं और न निकाल ही सकते हैं, अतएव वे सदैव दुःख भोगते रहते हैं। जो व्यक्ति प्रत्येक श्वास के साथ फेंफड़ों को पूरा पूरा भरते और खाली करते हैं, उनका खाया हुआ आहार बड़ी अच्छी तरह पचता है, और उनके रोगी होने की संभावना बहुत कम रहती है। सुतरां लम्बा और गहरा सांस लेना प्रत्येक व्यक्ति के लिए परमोपयोगी और लाभदायक है। इस विचार से लम्बा सांस खींचने की सबको आदत डालनी चाहिए। जो लोग खूब कसकर धोती या पायजामा पहनते हैं, उन्हें चाहिए कि कमर के ऊपर का वस्त्र और छाती के ऊपर का कपड़ा ढीला पहनने का अभ्यास डालें। और बूढ़ों की तरह झुककर बैठने की आदत परम हानिकारक है। इसलिए उसे भी छोड़ देना चाहिए। जो लोग लम्बा श्वास प्रश्वास लेने की आदत डालना चाहते हों उन्हें नीचे लिखी रीति पर आरंभ करना चाहिए।

प्रातःकाल उठकर जो घर में सुभीता हो तो घर में और नहीं तो दूसरी किसी ऐसी जगह में

जहां स्वच्छ हवा आती हो, चित्त लेट जाओ। तकिया रखने की जरूरत नहीं है। कमर के ऊपर का कपड़ा ढीला कर दो, और शरीर के सभी अंग प्रत्यंगों को ढीला छोड़ दो। हाथों को दोनों तरफ लंबा लंबा फैला दो। इसके उपरांत प्रसन्न चित्त से नाक के दोनों छेदों की राह से धीरे धीरे भीतर को श्वास खींचो। पहले तो धीरे धीरे पेट को भीतर खींचे हुए श्वास से भरो। पेट भर जाने के बाद फिर भी श्वास खींचते रहो, और तब तक खींचो जब तक कि छाती भी हवा से पूरी पूरी न भर जाय। छाती का ऊपर का भाग पूरा पूरा भर जाने तक श्वास बार बार खींचते रहो। इस रीति से फेंफड़ों में जितनी हवा भरी जा सके उतनी भरो। इसके उपरान्त फिर नाक के छेदों से धीरे धीरे फेंफड़ों में भरी हुई वायु को पूरा पूरा बाहर निकालो। यह श्वास लेने और निकालने की क्रिया पांच मिनिट से लेकर दस मिनिट तक करो। बहुत से दुर्बल फेंफड़े वाले व्यक्ति एक ही दो बेर इस रीति से श्वास लेने और निकालने में हाँफ जायँगे और व्याकुल होकर श्वास प्रश्वास लेना बंद कर देंगे। परन्तु इस क्रिया से हांफने लगना ही परम लाभदायक है। अभ्यास हो जाने पर इस तरह श्वास प्रश्वास लेना फिर परम सुगम हो जायगा। आरम्भ में बहुत से लोगों के फेंफड़े दो या तीन सेकिंड में ही हवा से पूरे पूरे भर जायँगे, अर्थात् दो या तीन सेकिंड में जितनी हवा श्वास के साथ भीतर जा सकता है उससे अधिक फेंफड़ों में नहीं समा सकेगी। मगर धीरे धीरे श्वास के द्वारा खींची गई हवा से फेंफड़े भरने का समय बढ़ता जायगा। पहले अठवाड़े में श्वास खींचकर फेंफड़ों को भरने में चार सेकिंड और खाली करने में भी चार ही सेकिंड का समय लगाना चाहिए। दूसरे अठवाड़े में छै सेकिंड, और चौथे में दस, इसी तरह फेंफडों को हवा से भरने और खाली करने का समय उत्तरोत्तर बढ़ाते जाना चाहिए। शनैः शनैः जब अभ्यास बढ़ जायगा तो आधे मिनट तक खींची गई हवा फेंफड़ों में भर सकेगी, और इतना ही समय फेंफड़ों को हवासे खाली करने में लगा करेगा। बहुत से बढ़े हुए अभ्यासवाले व्यक्तियों के फेंफड़ों में दो मिनट तक जितनी वायु खिंच सके उतनी भरती है। इसलिए धीरे धीरे अभ्यास को बढ़ाना ही मुख्य है। रात्रि को सोते समय भी यही क्रिया की जाय और दिनमें जब अवकाश मिल सके तभी इसे कर लेना लाभदायक होगा। जितनी हो सके उतनी अधिक वायु फेंफड़ों में जाने से और फिर फेंफड़ों के पूरा पूरा खाली होने से खून बहुत अधिक शुद्ध होता है, आरोग्य की वृद्धि होती है, बुद्धि विशुद्ध होती है, मन स्वस्थ और विचार शक्ति तीव्र होती है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से लाभ होते हैं।

कसरत करने से फेंफड़ों में अधिक वायु भरने का कार्य होता है। दौड़ने, कूदने, और अन्यान्य प्रकार की कसरतों से भी सांस आने जाने का काम खूब तेजी के साथ चलता है जिससे कि बहुत सी वायु फेंफड़ों में भरती और बाहर निकलती है, और शरीर का मैल बहुत कुछ बाहर निकल जाता है। इसलिए शुद्ध हवा में कसरत करना भी परम लाभदायक है।

ऊपर कही हुई रीति से श्वास लेने और निकालने की तथा कसरत के द्वारा फेंफड़ों में वायु भरने और निकालने की आदत डालने से शरीर के अनेक रोग मिट जाते हैं और नये रोग उत्पन्न होने से रुक जाते हैं।

हर एक व्यक्ति, ईश्वरकी दृष्टि में अपने पेशे का ऋणी है, क्योंकि उसी से उसकी जीविका चलती है। इसलिए उनका परम पावन कर्त्तव्य है कि वे उस पेशे के प्रति ईमानदार रहें और ऐसा कोई कार्य न करें जिससे उस पेशे का अपमान हो। + + +

यथाशक्ति लोगों के दुःख का निवारण करना ज्ञानी पुरुषों का कर्त्तव्य है। + +

मेरी डायरी के पृष्ठों से ।

(डा० गोपालप्रसाद 'वंशी', बेतिया)

बाहरी पदार्थों को अपने प्रति अनुसरण कराने के बजाय अपने मन को बाहरी पदार्थों के प्रति अनुसरण कराने का अभ्यास रखना, यह सुख का सच्चा रहस्य है।

\+ + +

जिस प्रकार दिन के अन्त में रात और रात के अन्त में दिन आता है, उसी प्रकार हमेशा सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख होता है। जो इकट्ठा हुआ है, उसका क्षय होगा, जो ऊँचे चढ़ा है, वह नीचे गिरेगा, जिसका संयोग हुआ है, उसका वियोग होगा और जो जीता है, उसका मरण होगा।

\+ + +

सारे भयों के ऊपर, निष्ठुर और निर्दय दैव के ऊपर और नीचे गरजती हुई अतृप्त तृष्णा के ऊपर ज्ञानी मनुष्य शान्त होकर स्थित रहता है।

\+ + +

बात बात पर विचार करो और सत्य को ढूँढ़ो।

\+ + +

सन्तोष जीवन का सबसे बड़ा धन है।

\+ + +

आकांक्षा और इच्छा में अन्तर है। आकांक्षा—दया, प्रेम, सत्यता, पवित्रता आदि स्वर्गीय पदार्थों के लिये होती है, जिनसे आत्मिक सुख मिलता है। इच्छा—सांसारिक विषय वासनाओं और भोग-विलासों के लिये होती है, जिनसे इन्द्रिय-सुख मिलता है।

\+ + +

जहां वासना है, वहां शान्ति नहीं। जहां शान्ति है, वहाँ वासना नहीं।

\+ + +

तुम अपनी स्थिति और अवस्था के स्वयं निर्माता हो। जितना तुम विषय-वासनाओं में लिप्त होगे और सांसारिक पदार्थों की इच्छा करोगे, उतना ही दुख उठावोगे, और जितना तुम उनका त्याग करोगे, उतना ही सुख पाओगे।

\+ + +

स्वर्गीय राज्य के निवासी अपने जीवन से पहिचाने जाते हैं। प्रेम, हर्ष, शान्ति, संयम, नम्रता, दयालुता, सत्यता सहनशीलता आदि गुण उन में सर्वदा और सर्वत्र रहते हैं।

\+ + +

मन की वृत्तियों को रोकने का नाम मौन है।

\+ + +

अपने जीवन को स्वस्थ और सुखी रखना चाहते हो तो अपनी रुचि को स्वाभाविक और सरल बनाओ।

\+ + +

पवित्रता का जीवन सरोवर-सा शान्त, मन्द पवन-सा उन्मद और दुग्धफेन-सा उज्ज्वल होता है।

\+ + +

ईश्वर के लिये सम्पूर्ण जगत एक सुन्दर खेल मात्र है। जो निरा कंगाल है, उसे अपनी कंगाली को खेल समझना चाहिए। जो अमीर है, उसे अपनी अमीरी को खेल समझ कर भोगना चाहिये। विपद् आवे तो उसे भी मनुष्य सुन्दर खेल समझे और सुख मिले तो उसे भी सुन्दर खेल माने। जगत् केवल क्रीड़ा-क्षेत्र-खेल का मैदान है।

\+ + +

यदि तुम दुनिया को सुधारना और उसके दुखों एवं कष्टों को दूर करना चाहते हो, तो पहले अपने आपको सुधार लो।

\+ + +

जिस मनुष्य ने अपने हृदय को राग, द्वेष, काम, क्रोधादि कषायों और कुत्सित इच्छाओं से रहित कर लिया है, उसके सुख और आनन्द की कोई सीमा नहीं।

\+ + +

मांस से दूर रहिए ।

(डा० पी० आर० जैन)

मानव शरीर की बनावट और अवयवों को देखकर ही यह स्पष्ट हो जाता है कि मांसाहार उसके लिए उपयोगी नहीं है । मांसाहार की बुराइयां सभी ने स्वीकार की हैं, चाहे हमारे प्राचीन महापुरुषों को ले लीजिये या वर्त्तमान पूर्वी और पश्चिमीय विद्वानों को । मांस खाने से दांत में रोग तो उत्पन्न हो ही जाता है, साथ ही सन्धि-वात आदि रोगों का कारण भी मांस ही है । शरीर के अतिरिक्त मांसाहार से मन पर भी बहुत असर पड़ता है और क्रोध की भावना मांस खाने वाले व्यक्तियों में अधिकता से पायी जाती है । क्रोध हमारे स्वास्थ्य को नष्ट करता है यह भी एक मानी हुई बात है । यही कारण है कि मांस खाने वाले व्यक्ति कभी भी नीरोग नहीं रहते और मांस से जो विकार पैदा होता है वह बराबर स्वास्थ्य को गिराता रहता है ।

संसार में जितने भी महान् पुरुष हुए हैं सभी ने मांसाहार की बुराई की है । भारतीय ऋषियों महात्माओं के अतिरिक्त भगवान बुद्ध, महावीर, सम्राट अशोक आदि ने भली भाँति इसकी बुराई की है । विदेशी महान पुरुषों में सुकरात, अरस्तू, पेथोगोरस मैथ्यू, गैरीवाल्डी, मिल्टन, नेलसन, शेली, पोप, जेम्स, पीटर आदि ने इसे बुरा बताया है । महात्मा. टालटरायने मांसाहार के सम्बन्ध में लिखा है—

'कुछ लोग कहते हैं कि मांसाहार अनिवार्य नहीं तो किन्हीं दशाओं में आवश्यक है । मैं कहता हूं कि यह आवश्यक नहीं है । मांसाहार से मनुष्य की पाशविक वृत्ति बढ़ती है, काम उत्तेजित होता है, व्यभिचार करने एवं शराब पीने की इच्छा होती है ।'

बहुधा लोग यह कहा करते हैं कि मांसादि खाने से मनुष्य में विशेष रूप से ताकत आती है । यह भी एक बड़ा भारी भ्रम है । कितने ही जानवर या पक्षी जिनका मांसखाकर शक्ति बढ़ाने की बात कही जातीहै वे सभी घासखाते हैं-। क्या माँस खाकर कोई मनुष्य हाथी के समान ताकतवर हो सकता है ? कदापि नहीं । इसके विपरीत जितने पहलवान हुए हैं वे विशेष रूप से दूध और फलका ही सेवन करते रहे हैं । मरुभूमि में ऊंट ही जीवनदाता सवारी है और उसके बिना वहां काम ही नहीं चल सकता । उसकी सहिष्णुता और ताकत देखकर दङ्ग रह जाना पड़ता है। लेकिन क्या वह कभी मांस खाता है ? गाय के दूध और घी में कितनी शक्ति है लेकिन क्या वह कभी मांस छूती है ? लेकिन मांस खानेवालों में शेर का गोश्त भी कोई खाता है ? क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो शरीर की ताकत बढ़ाने के लिये शेर आदि खूंख्वार जानवरों का मांस खाये ? कदापि नहीं । इससे यह निश्चित है कि मनुष्य क्या जानवर तक को भी मांस उपयोगी नहीं है । स्फूर्ति में घोड़े, मृग आदि पशु केवल तृण खाते हैं ।

कुछ समय पूर्व अमेरिका के येल विश्व-विद्यालय के एक विद्वान प्रोफेसर ने इस सम्बन्ध में अनुसंधान किया था और उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि मांसाहारी पहलवानों की अपेक्षा शाकाहारी पहलवान अधिक बली थे और उनमें सहिष्णुता कहीं अधिक थी । बैठक करने में मांसाहारी पहलवान अधिक से अधिक ४०० और शाकाहारी पहलवान ७०० से भी अधिक बैठक कर सके । अन्य यूरोपीय देशों में भी इसकी परीक्षा की गयी है और यह परिणाम निकाला गया कि शाकाहारी पहलवान अधिक ताकतवर होते हैं और उनमें कहीं अधिक सहिष्णुता होती है । लम्बी दौड़ में भी जितने विजयी होते हैं वे अधिकांश में फलहारी होते हैं । खासकर अंडा खानेवाला व्यक्ति तो अधिक दौड़ ही नहीं सकता क्योंकि उसके शरीर में तुरन्त गर्मी भर जाती है। अनेक बार ऐसी परीक्षा की गयी और सदैव

यही परिणाम निकला कि वास्तविक ताकत शाक, फल और दूध से मिलती है—मांस, मछली और अंडे से नहीं।

इसके अतिरिक्त डाक्टरों और आविष्कारक विशेषज्ञों ने लिखा है कि शारीरिक और मानसिक शक्ति के अलावा फलाहार से शरीर की सुन्दरता बढ़ती है और मुख पर कान्ति तो फल और दूध की देन है। स्त्रियों की सुन्दरता तथा बच्चों में स्फूर्ति, तेज और बुद्धि लाने के लिए फल और दूध का ही सेवन करना चाहिए। इससे यह स्पष्ट है कि मांस से शक्ति वृद्धि की दलील व्यर्थ है और उसमें कोई तर्क या आधार नहीं है।

फिर अहिंसा की रक्षा भी तो करनी है। अपना पेट भरने के लिये एक अन्य जीव की निर्दयतापूर्वक हत्या करना कहां का मनुष्यत्व है? जब नाना प्रकार के अन्न, शाक, फल और दूध मनुष्य के लिये हैं तो फिर मांसाहार की आवश्यकता ही क्या है। अधिकांश में मांस उन्हीं पशुओं का खाया जाता है जो दूध देते हैं इससे दूध की कितनी कमी है यह भारतीय खूब जानते हैं। यदि आज घर-घर में घी-दूध की कमी न हो तो फिर ताकत बढ़ाने के ढोंग को बनाये रखने के लिये मांस का आश्रय ग्रहण न करना पड़े। दूध और फल से चेहरे पर जो लाली और चमक आती है तथा दिमाग जितना तेज होता है मांसाहार से उतना ही शारीरिक और मानसिक विकार उत्पन्न होता है। नीचता, क्रूरता, अत्याचारादि का कारण प्रधानतया मांसाहार और मद्यपान है। वास्तव में मांसाहार और मद्यपान मानवोचित कार्य नहीं है।

संसार-प्रसिद्ध निरामिष भोजी महात्मा गान्धी की मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति संसारभर में विख्यात है। और आज तक जितने भी पहुंचे हुए महात्मा तथा मनुष्य को उन्नति पथ पर चलाने वाले नेता हुए हैं, वे सब निरामिष भोजी थे। आज हम जिन टाल्सटाय, एमरसन, थ्योरो, एडवर्ड, कारपेण्टर, रोमां रोलां आदि विदेशी मनीषियों का नाम सुन रहे सभी जन्म से मांसाहारी होने पर भी अन्त जाकर निरामिष भोजन के परिणाम पर प हैं। इससे मालूम होता है कि मनुष्यों के निरामिष भोजन ही उपादेय है।

शाकाहार निरापद है परन्तु मांसाहा अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। गो-मांस,शू माँस और भेड़-माँस में अक्सर कोढ़ और रोग के कीटाणु रहा करते हैं। हिन्दुस्तान मे अक्सर लोग बीमार जानवरों को ही लालच बेचकर अपना पिण्ड छुड़ाते हैं, जिससे खाने वालों को अक्सर बीमार जानवरों का मांस खाने को मिला करता है।

मांस अप्राकृतिक भोजन है। यही कार कि इससे शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। कथित सभ्य समाज इसके से कैन्सर, क्षय, ज्वर, कृमि आदि भयानक से पीड़ित है और ये रोग एक से दूसरे में फै हैं। माँस, मछली, अंडे आदि खाने से शरी भयानक रोग उत्पन्न होते हैं और यकृत, य राजयक्ष्मा, मृगी, फीलपांव, संधिवात, न और अन्य भीषण दोष उत्पन्न होते हैं।

पश्चिमीय वैज्ञानिक और डाक्टर लोग देशवासियों को मांसाहार का परिमाण घ की सलाह दे रहे हैं, और यही कारण है मांस के बदले वहां दूध, फल,शाक,अनाज व का अधिकाधिक प्रचार होता जा रहा है। शीतप्रधान देशों में आमिष भोजन अनुप सिद्ध होता जा रहा है तब भारतवर्ष जैसे ग्र प्रधान देश के लिये तो मांसाहार और भी ह कारक है।

अपने को भरसक बुराइयों से बचाते रहना अनिवार्य बातों से लाभ उठाना—यही कर्म कौशल है।

\+ +

उदारतापूर्ण कार्य स्वयं अपना पारितोषि

\+ + +

सत्सङ्ग और वातावरण का प्रभाव।

(श्री आदित्यप्रसाद कटरहा दमोह)

भौतिक जगत में हम देखते हैं कि जब एक वस्तु दूसरे के साथ रहती है तब उन वस्तुओं में उनके गुणों का परस्पर आदान-प्रदान होता है। अग्नि जल को गर्म करती और जल अग्नि को ठंडा करता है। उसी प्रकार सत्सङ्ग द्वारा भी परस्पर गुणों का आदान-प्रदान होता है।

एक साधारण पुरुष जब महात्माओं के बीच में पहुंच जाता है तब वह क्रमशः शुद्ध होने लगता है। उसका वातावरण बदल जाता है। और वह बदली हुई परिस्थिति में स्वयं भी बदल जाता है। मनुष्य अपनी परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। यदि वह छली, कपटी और धूर्त लोगों के बीच में पड़ गया है तो वह प्रत्येक व्यक्ति को सन्देह भरी दृष्टि से देखने वाला बन जावेगा। उसे सब लोग कपटी और स्वार्थी प्रतीत होंगे और वह किसी के साथ स्वतन्त्रता-पूर्वक व्यवहार न कर सकेगा। किंतु यदि वही व्यक्ति महात्मा पुरुषों के बीच में रहने लगे तो उनके त्याग-पूर्ण व्यवहारों से उसे यह अनुभव होगा कि मनुष्य का स्वभाव दिव्य है। उसे उनके साथ किसी तरह का सन्देह न होगा एवं वह सबके साथ खुलकर व्यवहार करेगा। इस तरह का वातावरण जीवन के लिए एक विडम्बना है और हम देखते हैं कि मनुष्य या इस तरह के लोगों के बीच में रहता है उसकी धारणाएं तदनुकूल हो जाती हैं और उसके व्यवहार से हम पता लगा सकते हैं कि वह किस प्रकार के वातावरण में पला है।

यदि कोई व्यक्ति ऐसे वातावरण में पहुंच जावे जहां लोग उसे मूर्ख, अस्पृश्य और घृणास्पद समझने लगें तो उसके चित्त में आत्महीनता की ग्रंथि का निर्माण होने लगेगा और उसकी शक्तियां कुंठित होने लगेंगी। वह अपना आत्म-विश्वास, आत्म-गौरव और निर्भीकता खो बैठेगा और दुखी बन जावेगा। भारतवर्ष के अछूतों का यही हाल हुआ है। उन्हें जन्म जन्मान्तर से बुरे संकेत दिए गए हैं, जिन्हें हम पुनर्जन्म के सिद्धान्त की आड़ में उचित और पाप-परिचालक कहते रहे हैं। इस संकेतों ने ही उन्हें दास-स्वभाव वाला बनाया है। ऐसा वातावरण सचमुच जीवन के लिए एक अभिशाप है।

जिन्हें अपनी श्रेष्ठता का अभिमान होता है उनके बीच में रहना मानों अपने जीवन को दुखी बना लेता है। किंतु यदि हम महात्माओं के बीच में रहें तो निश्चय ही हमारे अन्तस्तल में उनके सद्व्यवहारों के कारण आत्म-हीनता की ग्रंथि का निर्माण नहीं हो सकता। उनके साथ रहने से तो उल्टे ही ये ग्रंथियां मिट जाती हैं। जिस तरह कोई मनःशास्त्र विशेषज्ञ अपनी सहानुभूति के द्वारा चिकित्सा करते समय रोगी के गुप्त मनोभावों और रहस्यों को उससे कहलवा लेता है और ग्रंथि पड़ने के कारण को जानकर उसका निराकरण कर देता है उसी तरह सन्त-समाज में हमारे हृदय की ग्रंथियां उनके प्रेम-पूर्ण व्यवहार के कारण खुल पड़ती हैं और हम अनुभव करते हैं कि हमारा हृदय हल्का हो गया और हमारे दीर्घ रोग की चिकित्सा हो गई।

संतों के समागम में रहकर हमें जीवन के प्रति स्वास्थ्य-प्रद दृष्टिकोण प्राप्त होता है। उद्देश्य-हीन जीवन के स्थान में हमारा जीवन उद्देश्य-युक्त हो जाता है और हम दूसरों का अन्धानुकरण नहीं करते।

मनुष्य के आचार-विचार के लिए उसका वातावरण बहुत अधिक अंशों में उत्तरदायी है। अतएव यदि मनुष्य अपने वातावरण को बदल डाले तो उसके आचार-विचार और स्वभाव में परिवर्तन सहज ही हो जायगा। किन्तु वातावरण को बदलना, कहने में जितना सरल है, वास्तव

में वह उतना सरल नहीं। सच तो यह है कि वातावरण को बदलना ही परोक्ष रूप से अपने आचार-विचार को बदलना है अतएव उसका बदलना उतना ही कठिन है जितना कि आचार विचारों का। उदार-हृदय सहृदय व्यक्तियों का संग सबके लिए सुलभ है। गीता आदि धर्म-पुस्तकों का संग सबको सुलभ है। प्रत्येक व्यक्ति बे रोकटोक उनका सत्संग कर सकता है किंतु फिर भी उनके सत्संग से अनेकों प्राणी वंचित रहते हैं। उनका चित्त ही उन्हें उस सत्संग से वंचित रखता है। उनके हृदय में जो पूर्व संस्कार हैं वे ही बाधा डालते हैं और उन्हें सत्संग रुचता नहीं। बिना अचार-विचार बदले न तो हम सत्संग के योग्य बनते हैं और न बिना संगी साथियों को बदले हमारे आचार-विचार ही बदल सकते हैं। हमारे आचार-विचार और परिस्थितियां परस्पर एक दूसरे के परिणाम अथवा प्रतिबिम्ब हैं। अतएव अच्छे आचार-विचार वाला व्यक्ति ही सत्संग कर सकता है और हम कह सकते हैं कि जो महात्माओं का संग करता है उसका मानसिक धरातल निश्चय ही उच्च होना चाहिये।

सत्संग द्वारा आचार-विचार बदल ने से मनुष्य के जीवन का दृष्टिकोण भी बदलना अनिवार्य है। जो व्यक्ति आज प्रत्येक कार्य करते समय व्यक्तिगत लाभ का लेखा-जोखा करता है वही व्यक्ति सत्संग के प्रभाव से उन्हीं कार्यों को सामाजिक लाभ अथवा लोक-संग्रह की दृष्टि से करने लगे, यह भी सम्भव है। गांधी जी के प्रभाव में आकर अनेकों धनिकों ने अपने दृष्टि-कोण को बदला यह तो सभी जानते हैं।

सत्संग से हमें अपने ध्येय की ओर तीव्रगति से बढ़ने के लिये प्रेरणा मिलती है। अपने आध्यात्मिक विकास के लिए साधन करना जिनका सहज स्वभाव हो गया है, उनके लिए सत्संग की आवश्यकता भले ही न हो किंतु इतर जनों के लिए यह उत्साह वर्द्धक है। जिस विद्यार्थी ने व्यायाम करना अभी अभी शुरू किया है वह घर पर नित्य नियमित रूप से अकेले ही कितने दिनों तक व्यायाम करेगा। किन्तु यदि वही विद्यार्थी, अन्य व्यायाम-प्रिय विद्यार्थियों का संग पा जावे, तो उसके उत्साह में शिथिलता न आने पावेगी और धीरे धीरे व्यायाम करना उसका सहज स्वभाव हो जावेगा और फिर वह अकेले रहने पर भी उसी उत्साह से व्यायाम करता जावेगा। अतएव यदि आरम्भिक अभ्यासी को तीव्रगति से उन्नति करना है तो उसके लिए सत्सङ्ग अनिवार्य है।

जिस तरह कीड़े पर भृंगी का प्रभाव पड़ता है, उसी तरह सत्संग के द्वारा भी साधकों पर श्रेष्ठजनों का प्रभाव पड़ता है। यदि आप एक साधारण लौकिक प्राणी हैं और आपको किसी महात्मा-पुरुष की कृपा प्राप्त है तो उससे पत्र-व्यवहार करने में और उसके दर्शन करने में आपको जो समय बिताना पड़ेगा उसके कारण आपके विचार बहुत कुछ उसकी ओर खिंचे रहेंगे और आपके जीवन का एक पर्याप्त हिस्सा उनके सत्संग सम्बन्धी विषयों के विचार में ही व्यतीत होगा और आप भृंगी-कीट-न्याय की नाईं धीरे धीरे उनके ढांचे में ही ढलते चले जावेंगे। इसलिए कहा है "महत्संगो दुर्लभश्चा-मोघश्च"।

हँसी की बात नहीं है, यह जीवन का सत्य है। मनुष्य मूर्ख है यदि वह अपना नुकसान देखकर रोता है। नुकसान होने पर ही आत्मा को विचार करने और ईश्वर को पूजने का समय मिलता है, और सत्य का दर्शन भी प्रभु तभी कराता है।

\+ \+ \+

कष्टों को कम करना और उनके कारणों को दूर करने का प्रयत्न करना मनुष्य के करने योग्य कार्य है।

\+ \+ \+

भ्रम (चक्कर) रोग।

(आयुर्वेदाचार्य पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदीबी०ए०)

यह रोग आजकल हमारे नव शिक्षित तरुण स्त्री पुरुषों में बहुतायत से प्रचलित होगया है। इस रोग के रोगी के खड़े होने पर या किसी अन्यान्य प्रकार की तुच्छ शारीरिक चेष्टा करने पर, उसके नेत्रों के नीचे अन्धकार छा जाता है। कभी २ ऐसी अवस्था में रोगी चक्कर खाकर गिर भी पड़ता है। यदि रोगी इस दशा में गिरे नहीं, किंतु चक्कर के भँवर में ही पड़ जावे तो उसको निकट की सारी वस्तुयें घूमती हुई दिखलाई पड़ेगी या मालूम होंगी।

इस रोग की प्रथमावस्था आँखों तले अन्धकार लाती है, दूसरी अवस्था मस्तक में चक्कर उत्पन्न करती है और तीसरी अवस्था पृथ्वी पर गिरा देती है। इस अंतिम अवस्था के बाद रोगी की दशा मृगी रोग के जैसी होजाती है। दौरा भी आरंभ हो जाता है। किंतु मृगी रोग और इसमें अन्तर इतना ही पाया जाता है कि मृगी का रोगी अपने मुख से झाग गिराता हुआ हाथ पैर पटकता है, कभी २ कफ भी गिराता है और व्याकुलता प्रकट करता है। किंतु इस प्रस्तुत रोग (भ्रम रोग) का रोगी, अंतिम अवस्था के बाद से, केवल चुपचाप पड़ा रहता है।

रोग का कारण—यह रोग प्रायः सर की कमजोरी के कारण उत्पन्न होता है। मादक द्रव्यों (गांजा, चरस, सुपारी, पान, तमाखु, तेज चाय, शराब, मद्य आदि) के सेवन से, नजला या जुकाम के बाद किसी भूल से, मस्तक में अधिक ठंडी हवा लगने से, ठण्डे पदार्थों के अधिक सेवन से, प्राणवायु के बिगाड़ और दूषित मल से (दूषितमल से एक प्रकार की विषैली भाप निकलती है जो प्राणवायु से टकरा कर यह अवस्था उत्पन्न कर देती है, पित्त की अधिकता से, गर्मागर्म भोजन से और अधिक स्त्री प्रसंग करने से भी यह रोग पैदा हो जाता है।

रोग का स्वरूप और चिकित्सा—यदि कमजोरी, मादक द्रव्य या शीत के कारण यह रोग हो तो इसकी आरंभिक अवस्था में कानों में गुनगुनाहट, पेशाब में झागों का होना, पपोटे फड़कना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में सोना कम कर देना चाहिये। छैः घंटे से अधिक नहीं सोना चाहिए। व्यायाम करना चाहिए। ठण्डी और अजीर्ण उत्पन्न करने वाली व भारी चीजें न खाना चाहिए। गुलबनफशा, कासनी के बीज और सोंफ ७-७ मासे, मुनक्का ६ नग और गावजवां ५ मासे इन सबको रात्रि के समय गर्म पानी में भिगोकर तथा प्रातःकाल छानकर पीवे।

यदि यह रोग दूषित मल के कारण हो तो रोगी का चित्त हर समय चिंतितावस्था में रहता है। चुपचाप बैठे रहना अधिक पसंद करता है। भयावने और झगडालू विचार उत्पन्न होते हैं। बुरे स्वप्न दिखलाई देते हैं, निद्रा बहुत कम आती है, कुपच होता है, अंधकार से भय मालूम देता है।

ऐसी अवस्था में समयानुकूल साधारण जुलाब लेना चाहिये। अजीर्ण पैदा करने वाले तथा मल संचय करने वाले पदार्थ जैसे शकरकन्द, अर्वी, लहसुन, प्याज, चने की दाल आदि नहीं खाने चाहिये। पित्तपापड़ा, चिरायता, सोंफ, और गुलाब के फूल ७-७ मासे मुनक्का ६ नग ये सब जल में मिला (जल ५ से १० तोले तक) कुछ जोश देकर व छानकर तथा उसमें शरबत बनफशा ४ तोले मिला, आधा २ प्रातः और संध्याकाल को पिलावे।

यदि यह व्याधि पित्त या गर्मी के कारण हो तो रोगी के सिर और आंखों में दर्द होता है, आंखों में सूजन, मुख का वर्ण पीलापन, प्यास की अधिकता, मुख का स्वाद कडुवा, पेशाब सुर्ख आदि लक्षण होते हैं। यदि रोगी का जी मचलता हो तो समझना चाहिये कि असल कारण

आमाशय में है। इसी अवस्था में पानी में मीठा नीबू का रस डालकर पिलावे। इससे यदि कै हो जाय तो ठीक ही है। पित्त शीघ्र शांत हो जाता है। गर्म पदार्थ न खावे। धूप में न फिरे, गुड़, तैल, लाल मिर्च, उड़द की दाल न सेवन करें। शारीरिक तथा मानसिक विशेष परिश्रम न करे।

इस पर कासनी बीज, खतमीबीज, गुलबनफशा, नीम की कोपल, नीलोफर और पित्तपापड़ा ७-७ मासे, उन्नाव ५ दाने, आलूबुखारा ५ नग इनको रात्रि के समय गर्म जल में भिगोकर प्रातः मल छानकर तथा उसमें शरबत नीलोफर दो तोला मिला सेवन करे। और श्वेत चंदन को गुलाबजल में घिसकर कनपटी पर लेप करें।

यदि अधिक प्रसंग के कारण यह विकार हुआ हो तथा कुछ प्रमेह की भी शिकायत हो तो किसी सद्वैद्य द्वारा परीक्षा कराकर प्रमेह नाशक उपचार करे। ध्यान रहे वीर्यपात की अधिकता सैकड़ों रोगों की जड़ है। इस रोग का मूल कारण जो मस्तक की निर्बलता है वह भी प्रायः वीर्यपात ही से उत्पन्न होती है। अतः ब्रह्मचर्य धारण की परम आवश्यकता है।

जिसके पास कुछ नहीं है वह गरीब नहीं कहा जा सकता। गरीब तो वह है जिसकी अभिलाषा अधिक है।

\+ + +

आदम के लिए स्वर्ग घर था। उसके वंशजों में भले आदमियों के लिए घर ही स्वर्ग है।

\+ + +

जब तक तुम घमंड को छोड़ कर बच्चों की तरह सरल नहीं हो जाते जब तक तुम्हारा प्रवेश स्वर्ग के राज्य में नहीं हो सकता।

÷ ÷ ÷

दरिद्रता को कुछ वस्तुओं की आवश्यकता रहती है, विलासिता को अनेक वस्तुओं की और तृष्णा को समस्त वस्तुओं की। + +

भगवान बुद्ध की वाणी।

---

(१) अपने को अपने आप उठा। अपनी आप परीक्षा कर। इस प्रकार हे भिक्षु! तू अपनी आप रक्षा करता हुआ और विशार शील होकर सुख लाभ करेगा।

(२) जटा, गोत्र या जाति से कोई ब्राह्मण नहीं होता। जिसमें सत्य और धर्म है वही ब्राह्मण है।

(३) मैं किसी को उसके कुल अथवा माता के कारण ब्राह्मण नहीं कहता चाहे उसका लोग सम्मान ही क्यों न करें। मैं तो उसको ब्राह्मण कहता हूं जो अपरिग्रही और पाप बन्धनों से रहित है।

(४) मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो क्रोध रहित, कर्तव्य परायण, शीलवन्त, इच्छा रहित, संयमी और मुक्ति के निकट है।

(५) मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं जो कर्कशता रहित, शिक्षा युक्त और सच्ची वाणी बोलता है जिससे किसी का दिल न दुखे।

(६) मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जिसमें विषय वासना नहीं है, जिसने सचाई को जान लिया है। जिसके संशय छिन्न भिन्न हो गये हैं। जिसने अमृत पद के मार्ग को जान कर उसे ग्रहण कर लिया है।

(७) मैं उसको ब्राह्मण कहता हूं जो नेता, प्रबल, बीर, महर्षि, विजित काम, पवित्र और बुद्ध है।

(८) अगर तुमको ऐसा निष्पक्ष साथी मिल जाय जो नेक और बुद्धिमान हो और किसी प्रकार की कठिनाई से न हारे तो तुम दत्त चित्त होकर उसके साथ चल दो।

(९) प्रमाद रहित हो अपने विचारों को सुरक्षित करो। कीचड़ में फंसे हुए हाथी के समान बुराइयों से ऊपर उठने का प्रयत्न करो।

अपने विषय में चिंता न करें।

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

चिंता एक महानाश करने वाली व्याधि है, जिससे मनकी समस्त उत्तमोत्तम शक्तिएँ पंगु हो जाती हैं। एक बार की चिंता सारे दिन की संचित शक्ति को नष्ट कर डालती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अपने विषय में चिंतन करने से मनुष्य विकार ग्रस्त, रोगी, दीन हीन रहता है। उसमें नए नए शक शुबे उठते हैं। वह कई ऐसी कमजोरियां अपने व्यक्तित्व में बढ़ा लेता है, जिसका अस्तित्व बिल्कुल नहीं होता। धीरे धीरे ये कल्पित रोग न्यूनताएँ शरीर में विचार शक्ति के दुरुपयोग स्वरूप स्वतः प्रकट हो जाती हैं। व्यक्ति बीमार हो जाता है।

अपनी कमजोरी का एक भी विचार मन में नहीं जाना चाहिए, अन्यथा परिणाम बड़ा भयंकर होता है। चिंता संशय उत्पन्न करती है। अनेक बार बीमारियों के विज्ञापन देखते देखते कितने ही व्यक्तियों को यह भ्रम हो जाता है कि हम कमजोर हैं, नपुंसक हैं, उदर पीड़ित हैं या पीले पड़ते जारहे हैं, हाजमा बिगड़ता जा रहा है, हम दुबले पतले होते जारहे हैं। ये सब रोग भ्रम वश अन्तर्मन से उमड़ उठते हैं और मनुष्य का क्षय करने लगते हैं।

चिंता द्वारा आन्तारिक जगत् से कुछ ऐसे विष निकलते हैं, जिनसे हमारी बुद्धि क्षय होने लगती है, आनन्द मिट जाता है, उत्साह क्षीण हो जाता है। और मस्तिष्क में गर्मी बढ़ जाती है, मस्तिष्क के श्वेत बालुका और ग्रे मैटर सूखकर कड़े हो जाते हैं, मस्तिष्क के राज्य में अस्त व्यस्तता फैल जाती है।

चिंता एक प्रकार की मानसिक आदत है। कुछ व्यक्ति अनहोनी बातों, बेसिर पैर की कल्पनाओं में रत रहते हैं। कहीं यह न हो जाय, वह हो जाय, नौकरी न छूट जाय, बालक न मर जाय? चीजें मंहगी न हो जांय? बच्चों की शादी कैसे होगी? कल घर में अमुक वस्तु नहीं है, क्या होगा? रात में कोई घर में न घुस आवे?—न जाने कितनी चिताएँ हमारे सभ्य जीवन को अस्त व्यस्त कर रही हैं।

इस अस्वास्थ्य कर आदत को स्वभाव से दूर कीजिये। उन्मुक्त, मस्त रहना सीखिये। जब कल आयेगा, देखा जायगा। अभी से क्यों फिक्र करें। आज तो मानसिक स्वतन्त्रता का सुख लूट लें, कल अपनी फिक्र खुद करेगा।

उत्तम पुरुष वही है, जो चिंता के स्थान पर सदैव शान्त और गंभीर रहता है। चिंता के मोहपाश में नहीं फंसता बल्कि उसके अंधेरे को साफ कर वास्तविक चीजों को पहचानता है। वह मानसिक समस्वरता प्राप्त कर रहा है।

हम ठीक तरह विश्राम करना नहीं जानते। इसी से विश्राम के क्षणों में भी चिंता आ दबाती है। बेफिक्री की नींद में जो स्वास्थ्य प्रदायिनी शक्ति है वह उस बच्चे को देखकर मालूम हो सकती है जो बिना किसी चिंता के खुर्राटे भरी नींद का मजा लूटता है।

चिंता हमारी छाया है। क्या हम अपनी परछाहीं से डर जांय? क्या हम इस परछाहीं को असली चीज समझ कर डर उठें?

चिंता पर विजय प्राप्त करने का सर्वोत्तम मार्ग यह है कि हम अन्य उत्तम कार्यों में अपना मन लगायें, अपने को छोड़ कर और बातों पर मनन करें।

अपने शरीर को अन्तरीप समझो जिसमें समुद्र की लहरें दिन-रात टकराया करती हैं, लेकिन तब भी वह अपने स्थान को नहीं छोड़ता। इसी प्रकार जितनी आपत्तियां तुम पर आवें, सभी को वीरता के साथ सहन करो और उनसे विचलित न हो।

\+ \+ \+

संगठित हूजिए—एक रहिए।

मनुष्य प्राणी आज सृष्टि का मुकटमणि है। उसने अनेक दिशाओं में आश्चर्यजनक उन्नतियां की हैं। साधारण श्रेणी के पशु से ऊपर उठकर वह उन्नति के उच्च शिखर पर जाबैठा है। इस उन्नति का मूलभूत कारण उसकी एकता शक्ति, मिलन शक्ति, सामाजिकता, मैत्री भावना, सहयोग परायणता ही है। मनुष्यों ने आपस में एक दूसरे को सहयोग दिया, अपनी स्थूल और सूक्ष्म शक्तियों को आपस में मिलाया, इस मिलन से ऐसी ऐसी चेतनाऐं, सुविधाऐं उत्पन्न हुईं जिनके कारण उसके उत्कर्ष का मार्ग दिन दिन बढ़ता गया। दूसरे प्राणी जो साधारणतः शारीरिक दृष्टि से मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक सक्षम थे, इस मैत्री भावना, सम्मिलन योग्यता के अभाव में जहां के तहां पड़े रहे, वे अति प्राचीनकाल में जैसे थे वैसे ही अब भी बने हुए हैं। मनुष्य की तरह उन्नति का सुविस्तृत क्षेत्र वे प्राप्त न कर सके। संघ शक्ति भी एक महान् शक्ति है उसे भले या बुरे जिस भी मार्ग में जिस भी कार्य में लगाया जायगा उधर ही आश्चर्यजनक सफलता के दर्शन होंगे।

मनुष्यों में भी अनेक देश, जाति, वर्ग, समूह हैं। उनमें वे ही आगे बढ़े हैं, वे ही समुन्नत हुए हैं जिनमें अपेक्षाकृत अधिक सहयोग भावना है। व्यक्तिगत रूप से विचार किया जाय तो भी हमें वे ही व्यक्ति समृद्ध मिलगे जिन्होंने किसी भी उपाय से दूसरों का अधिक सहयोग प्राप्त किया है। कोई भी सेठ साहूकार बिना मुनीम, गुमास्ते, कारबरदार, कारीगर, मजदूर, एजेन्ट आदि के सहयोग के बिना समृद्धिशाली नहीं होसकता। चोर, उचक्के, ठग, डाकू, लुटेरे, जुआरी आदि को जो सफलताऐं मिलती हैं उसमें उनके दल की संघशक्ति ही प्रधान कार्यकर्त्री है। गुप्त षड्यंत्रों के द्वारा रोमांचकारी काण्ड होने की घटनाऐं सामने आती हैं, उनके साहसिक कार्यों को देखकर सन्न रह जाना पड़ता है। इन विचित्र कारगुजारियों के अन्दर षड्यंत्रकारियों का संगठन ही होता है। इस संगठन के कारण वे अलभ्य साधनों को पर्याप्त मात्रा में जुटालेते हैं। कुछ समय पूर्व के भारतीय क्रान्तिकारियों के साहसिक षड्यंत्र और इन दिनों संप्रदाय वादियों द्वारा आयोजित सीधीकार्यवाही के कांण्ड यह बताते हैं कि चंद मनुष्यों का घनिष्ट सहयोग कैसे कैसे परिणाम उत्पन्न कर सकता है।

बुरे लोगों द्वारा, बुरे कार्य के लिए, आपसी घनिष्ट संघ बनाकर अवांछनीय साहसिक कार्य होते हुए हम अपने चारों ओर नित्य ही देखा करते हैं, उन उदाहरणों की कमी नहीं। पर साथ ही यह भी तथ्य सामने है कि श्रेष्ठ लोगों ने श्रेष्ठ कार्यों से बड़ी २ महान् सफलताऐं आपसी संगठन के कारण प्राप्त की हैं। बिजली, अग्नि, गैस, भाप की तरह जनशक्ति भी अनेक गुनी बढ़ जाती है। व्यक्तिवाद के स्थान पर समूहवाद की प्रतिष्ठापना का महत्व अब समस्त संसार पहचानता जारहा है। पृथक पृथक रूप से छोटे छोटे प्रयत्न करने में शक्ति का अपव्यय अधिक और काम कम होता है—परन्तु सामूहिक सहयोग से ऐसी अनेकों चेतनाओं और सुविधाओं की उत्पत्ति होती है जिसके द्वारा बड़े बड़े कठिन कार्य सरल होजाते हैं। सम्मिलित खेत, सम्मिलित रसोई, सम्मिलित व्यापार, सम्मिलित संस्था आदि अनेकों दिशाओं में सम्मिलन का क्षेत्र विस्तीर्ण होरहा है। इस प्रवृत्ति की वृद्धि के साथ साथ मानव प्राणी की सुख शान्ति एवं सफलताओं में भी आश्चर्य जनक रीति से अभिवृद्धि होगी।

———

धीमी-धीमी वर्षा बहुत देर तक होती है, किन्तु एकदम आने वाला तूफान थोड़ी देर रहता है।

\+ \+ \+

मानवता का क्रन्दन

(श्रीमहावीर प्रसाद विद्यार्थी, 'साहित्यरत्न', टेढ़ा-उन्नाव)

घोर हाहाकार मिट जाएगा धरातल का,
पारावार दुख का अपार पट जाएगा?
हास बिखराएगा दिनेश का विकास मंजु,
यामिनी का कुटिल विलास हट जाएगा?
गूँजेगी मधुर स्वर-लहरी खमण्डल में
घन की घटा का कटु रोर मिट जाएगा?
छाएगा प्रभात का प्रकाश मेदिनी में कब
तम-तोम-जाल यामिनी का कट जाएगा?

जाएगी अतल को जगत की अशान्ति कब
भूतल पै शान्ति की पताका फहराएगी?
हिंसा वसुयाम रक्त-धारा है बहानी जहाँ
भ्रातृ—भाव—शीतल—समीर लहराएगी?
ग्राम, पुर, सरिता, विपिन, शैल, सिन्धु पर
नव्य भव्य युग की प्रभा अनूप छाएगी?
कब एक डोर में बँधेगी ये सकल सृष्टि,
हर्ष की हिलोर चारों ओर सरसाएगी?

भाई का बनेगा रक्त-शोषक न भाई कब
छल-छन्द की न भावना ये रह जायगी?
कब आंख खोलेगी मदान्ध ये मनुष्य-जाति,
छोड़ेगी कुमार्ग, सत्य के सुगीत गाएगी?
अपने विनाश हेतु ज्ञान के विधान कर
रक्त ही से प्यास कब तक ये बुझाएगी?
कालिमा सकल मिट जाएगी हदै की कब
दिव्य ज्ञान-ज्योति सुख-शान्ति सरसाएगी?

घोर अविवेक की निशा में हो रहा है भ्रान्त,
फूल क्या मिलेंगे तुझे शूल जब बोएगा?
भाव क्रूर आसुरी हदै में भरे मानव! ये,
कब तक नर-मुण्ड-माल तू पिरोएगा?
कब तक सोता तू रहेगा मोह-शय्या पर,
पाएगा विषय फल, तब मूढ़ रोएगा।
सूखा जा रहा है अनजान रस जीवन का,
चेत कब तक ये अमूल्य क्षण खोएगा?